इतिहास की समझ

शिक्षक मार्गदर्शिका

पवन कुमार गुप्ता

इतिहास की समझ

शिक्षक मार्गदर्शिका

पवन कुमार गुप्ता

ज्ञान तरंग : आस–पास के परिवेश से शिक्षण

सिद्ध

संपादन	:	**पवन कुमार गुप्ता**
सहयोग	:	डॉ. तुमन सिंह
प्रकाशन वर्ष	:	16 मई, 2003 (प्रथम)
द्वितीय आवृत्ति	:	16 मार्च, 2010
सहयोग राशि	:	50/–रुपए

प्रकाशक : सोसायटी फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ हिमालय (सिद्ध)
पो0 बा0 19, हेजलवुड, लंढौर कैंट, मसूरी – 248 179 (उत्तराखंड)
फोन : 0135–2631304
email : pawansidh@gmail.com
website : www.sidhsri.com

ISBN : 978-81-87827-15-3

मुद्रक : दॅ प्रिज्म, बी–62/2, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज–II,
नई दिल्ली–110 028

आर्थिक सहयोग : कुसुमा ट्रस्ट, हैदराबाद

विषय–क्रम

- दो शब्द iv
- भूमिका 01
- इतिहास की समझ 05
- मेरे परिवार का इतिहास 31
- मेरे गाँव का इतिहास 39
- परिशिष्ट 69

दो शब्द

'इतिहास की समझ' नामक इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन सन् 2003 में राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद् (एन.सी.आर.आई.) के आर्थिक सहयोग से हुआ था। 'सिद्ध' पाठशालाओं के बच्चों एवं अध्यापकों की इस पुस्तक के लेखन में किसी–न–किसी रूप में महत्त्वपूर्ण मदद मिली है। शिक्षा एवं शिक्षण के क्षेत्र में सरोकार रखने वाले शिक्षाविदों और एजेंसियों ने प्रथम संस्करण की विषय–वस्तु और सोच की सराहना की। हमारे लिए यह प्रोत्साहन और संतोष की बात रही है कि सन् 2009 में छत्तीसगढ़ सरकार के शिक्षा विभाग ने इस पुस्तक की 42,000 प्रतियां छापकर अपने स्कूलों में बँटवाई। अब वे इसी तरह की अन्य विषयों में भी पुस्तकें निकालने में प्रयासरत है और हम उन्हें सहयोग दे रहे हैं ।

सुधी पाठकों ने पुस्तक के प्रथम संस्करण के बारे में हमें अपने विचारों से भी अवगत कराया है। हमने महसूस किया कि पुस्तक के मूल थीम और स्वरूप के साथ छेड़छाड़ किए बिना यथास्थान कुछ परिवर्तन–परिवर्धन करना जरूरी है। इस काम के लिए हमें वित्तीय संसाधनों की जरूरत थी। **'कुसुमा ट्रस्ट',** हैदराबाद ने सहयोग का हाथ बढ़ाया। उन्हीं की आर्थिक मदद से हम इस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं। हमें उम्मीद है कि संशोधित रूप में पुस्तक को और भी पसंद किया जाएगा। लोगों की माँग पर हम इस थीम पर अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित करने जा रहे हैं।

पिछले 13–14 सालों में, हमने शैक्षणिक क्षेत्र में जो काम और शोध किए हैं, उनसे हमें बहुत–कुछ सीखने को मिला है। हम शिक्षण को कक्षा और पाठ्यपुस्तक की चाहरदीवारी के भीतर घेरकर नहीं रखना चाहते। हम इस दिशा में प्रयासरत हैं कि स्कूल पाठ्यपुस्कों के घेरे से अपने को मुक्त करें और शिक्षण को वे व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें। विषयों को समन्वित रूप से पढ़ाए जाने का भी हमारा आग्रह है। ज्ञान को हम एक संपूर्ण इकाई के रूप में देखते हैं; खंडों में बाँटने से हम उसके मूल स्वभाव को विकृत कर देते है। इसलिए, हमारा जोर विषयों के समन्वित शिक्षण पर हैं।

शिक्षा का उद्देश्य छात्र में मौलिक सोच को विकसित करना है। छात्र के मस्तिष्क में सूचनाएँ और जानकारी भर देने की अपेक्षा उनमें ज्ञान/अवधारणाओं के प्रति समझ विकसित करना हमारा ध्येय है। हमारा इस दिशा में भी प्रयास है कि पढ़ाई केवल पुस्तकीय ज्ञान बनकर ही न रहे बल्कि वह रोज की जिन्दगी में आने वाली समस्याओं को हल करने में अहम् भूमिका निभाने का काम करे। स्थानीय परिवेश के माध्यम से छात्र अवधारणाओं को समझें और फिर कहीं भी उसे उपयोग में लाने की क्षमता का उनमें विकास हो – हम ऐसे शिक्षण की दिशा में प्रयासरत हैं।

यह पुस्तक मुख्य रूप से शिक्षकों के लिए लिखी गई है। हमारी मंशा यह है कि वे इसे मार्गदर्शिका के रूप में अपनाएं और अपने परिवेश, आवश्यकताओं, छात्रों की उम्र, अपनी अभिरुचि के अनुसार और समय की उपलब्धता के आधार पर प्रोजेक्ट बनाएँ। ऐसा करके बच्चों की सृजनात्मकता और मौलिक सोच का विकास होगा। शिक्षक की पहल से इस शिक्षण–विधि के द्वारा स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में चमत्कारिक परिवर्तन संभव है।

चैत्र शुक्ल 1, संवत् 2067
16 मार्च, 2010

पवन कुमार गुप्ता
डॉ. तुमन सिंह

भूमिका

'सिद्ध' एक शैक्षणिक संस्थान है। 1989 से शिक्षा के क्षेत्र में हमारे प्रयास और प्रयोग जारी हैं। टिहरी गढ़वाल के जौनपुर विकास खण्ड में प्राथमिक शिक्षा से वंचित बच्चों के लिए पाठशाला शुरू करके जो पहल हुई थी, उसने कुछ विस्तार के साथ आज एक ऐसे मिशन का रूप ले लिया है जो सही शिक्षा का विकल्प देने की दिशा में अग्रसर है। यह संस्थान प्राथमिक विद्यालय, बालशाला, बालवाड़ी और 'बोधशाला' के नाम से माध्यमिक विद्यालय का संचालन करता है। यह संस्थान समय–समय पर शैक्षणिक कार्यशालाओं और बौद्धिक कार्यक्रमों का आयोजन भी करता रहता है। इन शिक्षण–प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से जो अनुभव प्राप्त किए हैं, उनके आधार पर हमने पढ़ाने की सामग्री, विषयवस्तु, पाठ्यक्रम, पढ़ाने के तरीकों में समय–समय पर अनेक बदलाव किये।

'सिद्ध' ने अपनी यात्रा के दौरान 1996 में एक बड़ी वैचारिक करवट ली। हमारे अनुभवों और 'सही शिक्षा' के विकल्प की खोज की जिज्ञासा से हमारे शैक्षणिक कार्यक्रम सँवरने लगे और उन्होंने एक निश्चित दिशा भी पकड़ ली। गांधीजी पथ–प्रदर्शक बने। अपने कार्यक्षेत्र 'जौनपुर' की निरक्षर (और इस कारण अशिक्षित मानी जाने वाली) महिलाओं से हमने शिक्षा का पाठ पढ़ा (जब उन्होंने पढ़े–लिखे लड़के/लड़कियों के गाँव से, श्रम से और परिवार से विमुख होने की बात की)। उनके अनुभवों से यह बात और उजागर हुई कि वर्तमान शिक्षा लोगों की अपेक्षाओं और सामाजिक जरूरतों का भराव नहीं कर पाती। यह देख–जानकर हमें लगा कि ऐसी वैकल्पिक शिक्षा का उदाहरण पेश किया जाये जो हमें सुख–समृद्धि पूर्वक जीने की समझ दे।

व्यक्ति एक व्यापक समाज का सदस्य है। वह मानव–समाज के साथ तो क्रियाकलाप करता ही है पर साथ ही अपने चारों ओर के परिवेश से भी वह अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, नदी–नालों, पहाड़, मिट्टी–पत्थर, खनिज संसार और उनसे बनी तमाम भौतिक–रासायनिक वस्तुओं से उसका दिन–रात का संबंध है। हम शिक्षा को इस नज़रिए से देखते हैं कि वह प्रकृति के इन उपांगों के साथ हमारा सहज सहसंबंध स्थापित करने में मदद करे।

शिक्षा का हमारा काम अभी दो विषयों पर केन्द्रित है – एक प्रचलित शिक्षा द्वारा फैलाये भ्रमों को समाज के सामने उजागर करना और दूसरा, प्रचलित शिक्षा–व्यवस्था के विकल्प हेतु वैचारिक स्पष्टता एवं व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत करना। हमारे प्रयोग और शोध इसी दिशा में जारी हैं। इन प्रयोगों के पीछे हमारी समझ यही रही है कि आखिर पाठ्यपुस्तकें या पाठ्यक्रम तो ज्ञान प्राप्ति का एक साधन मात्र ही हैं, साध्य नहीं। शिक्षा के उद्देश्य को पाने के बहुत सारे माध्यम हो सकते हैं। जो प्रचलित पाठ्यपुस्तकें स्कूल–कॉलेजों में पढ़ाई जाती हैं, वे बच्चों में अनजाने ही उच्च–निम्न,

अगड़ा–पिछड़ा, सभ्य–असभ्य जैसी भावनाओं का बीज–वपन करती है; परोक्ष रूप से बहुत–सारे गलत मूल्य भर देती है। जिस उम्र में मौलिक चिंतन का अंकुरण होना चाहिए, अपने के प्रति हीनभावना मन में घर कर जाती है।

हमारी कोशिश रही है कि हम स्थानीय समाज, परिवेश, भूगोल, पारम्परिक ज्ञान–विज्ञान को माध्यम बनाकर बच्चों को पढ़ायें। इसके लिए हमने आस–पास के कृषि के तरीकों, पौधे–वनस्पतियों, फसलों, परिवार और गाँव के इतिहास, तीज–त्योहारों, स्थानीय मेलों, गणना के तरीकों, इत्यादि को अपना शिक्षण–विषय बनाया। इस सन्दर्भ में हमारा अनुभव यह रहा है कि इस विधि से प्राइमरी स्तर और बोधशाला (जूनियर हाई स्कूल स्तर) के बच्चों को, उनकी शारीरिक और बौद्धिक जरूरतों को पूरा करते हुए, दक्षतापूर्वक पढ़ाया जा सकता है। इस विधि में भाषा–शिक्षण केंद्र में रहता है – विषयगत ज्ञान के साथ–साथ भाषा पर पकड़ स्वतः बढ़ती जाती है। इस तरह पढ़ाने से हमें कई फायदे नजर आये। अपने आस–पास की जिन जानकारियों को बच्चे पहले अनदेखा करते थे, उनकी अहमियत उनको समझ में आने लगी। बड़े–बुजुर्गों से कई बातें समझने को मिलती हैं, जिससे उनका आत्मसम्मान बढ़ता है।

हम शिक्षण प्रणाली में ज्ञात से अज्ञात तथा सरल से कठिन की ओर बढ़ने का प्रयास करते हैं। इस प्रणाली में बच्चे कई प्रक्रियाओं से होकर गुजरते हैं। इससे वे चर्चा करना, योजना बनाना, प्रश्न बनाना, अवलोकन व पर्यवेक्षण करना, सूचनाओं को एकत्र और प्रस्तुत करना तथा उनका विश्लेषण करना, आदि बातें स्वतः सीखते हैं। साथ ही, सामूहिक रूप से काम करने की भावना भी विकसित होती है। हमने पाया कि इस प्रयोग से बच्चों की अभिव्यक्ति और मौलिक चिन्तन में विकास हुआ है। बच्चों का लेखन–कौशल तो सुधरा ही, शिक्षकों की समझ और आत्मविश्वास में भी अभूतपूर्व बदलाव देखे गये। अपने चिंतन और अपनी सोच पर उनका विश्वास पुख्ता होता जा रहा है। अध्यापक की जिम्मेदारी होती है कि वह छात्रों के अनियोजित लेखन को व्यवस्थित करवाने का निरंतर प्रयास करता रहे और अपने ज्ञान को अद्यतन रखने का भी प्रयास करता रहे।

आजकल 'वैल्यू एजूकेशन' (मूल्य–आधारित शिक्षा) की बहुत चर्चा है। मूल्य–आधारित शिक्षा में हम यह देखना चाहते हैं कि बच्चे ऐसी गतिविधियों में भागीदारी करें कि बड़े–बुजुर्गों और पर्यावरण–प्रकृति के प्रति उनमें स्वतः कृतज्ञता का भाव जगे। इस प्रयोग के चलते बच्चे अपने बड़े–बूढ़ों से बात करते हैं, उनसे जानकारियां और ज्ञान हासिल करते हैं। इस पर कक्षा में जब चर्चा होती है तो कई बातें एक साथ घटती हैं। बड़ों से कैसे बातें की जाती हैं, यह समझ में आने लगता है। बड़े–बुजुर्गों की बातों में बहुत कुछ दमदार होता है, जो बच्चों को सचमुच छूता है। इससे वे स्वतः उनका आदर करना सीखते हैं। बुजुर्ग पढ़े–लिखे भले ही न हों, फिर भी शिक्षित तो हो ही सकते हैं – यह उन्हें समझ आने लगता है। वे शिक्षित और पढ़े–लिखे में भेद करना सीखते हैं तथा शिक्षा को सही परिप्रेक्ष्य में देखने का भाव उनमें जगने लगता है।

इतिहास की संकल्पना विद्यार्थियों के मन–मस्तिष्क में ठीक से बैठ जाए; 'इतिहास की समझ' को वे ठीक से पकड़ लें– यह सोच भी इस पुस्तक को लिखने के पीछे रही है।

आज इतिहास के नाम पर विभिन्न कक्षाओं में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह मात्र घटनाओं का लेखा–जोखा होता है। प्रायः उसमें नकारात्मक मूल्यों का प्रसार होता है, यथा भाइयों का राजगद्दी लेने के लिए खूनी संघर्ष या एक आक्रामक सभ्यता का किसी मूल सभ्यता को समूल नष्ट करने का वृत्तान्त अथवा आगत सभ्यता द्वारा मूल सभ्यता की कृषि पद्धति, वास्तुकला को नष्ट करके अपनी व्यवस्था के स्थापना की बातें ही उसमें होती हैं। इनकी भी विवेचना ठीक तरह से नहीं की जाती। बच्चे यह समझ ही नहीं पाते कि कैसे आक्रामक सभ्यता मूल निवासियों पर प्रहार करके अस्मिता, आत्मविश्वास और स्वाभिमान पर आघात करती है। इस प्रकार के इतिहास से हममें अपने या पराये, देश–समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्य के लिए गवेषणा को लेकर कोई समझ नहीं बनती। कुछ इतिहासकार अब इतिहास को व्यापक सामाजिक–राजनैतिक संदर्भों में देखने की बात जरूर करने लगे हैं परन्तु इससे भी हमें अपने अतीत के उन सूत्रों को समझने में मदद नहीं मिलती जिन्हें ज्ञान, परम्परा, धरोहर या पीढ़ी–दर–पीढ़ी अनुभवों का लेखा–जोखा कहते हैं। बच्चे इतिहास को अपने जीवन से जोड़कर देख सकें, इस बात का प्रयास इस मार्गदर्शिका में किया गया है।

इतिहास क्या है; उसका प्रयोजन क्या है; उसका हमारे आज से क्या संबंध है और इतिहास को हमारे परिवेश से जोड़कर कैसे देखा जा सकता है – इन बातों की समझ हमने इस परियोजना के जरिये बच्चों को देने का प्रयास किया है।

विगत में हुई घटनाओं का व्यापक प्रभाव हमारे जीवन, रहन–सहन, खान–पान, पहनावे, चिंतन और आचरण पद्धति पर पड़ता है। इतिहास को यदि सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो बच्चे की समझ बढ़ेगी। वह इतिहास को अपने जीवन से जोड़ पाएगा और उसे 'भिन्नता' या विविधता भी समझ में आयेगी। इसके आधार पर वह सही–गलत की जाँच कर सकता है और अपने समाज की ताकत एवं आगत सभ्यता के प्रभाव से आई कमजोरियों की जाँच–परख भी कर सकता है। 'भिन्नता' और 'विपरीत' का भेद भी उसे समझ आता है। दुनिया विपरीत ध्रुवों में ही नहीं बँटी है; जहाँ एक ध्रुव सभ्य, अगड़ा और दूसरा असभ्य, पिछड़ा है। दुनिया में विभिन्न सभ्यताएं हैं, जिनकी तुलना बहुत हद तक निरर्थक है।

मार्गदर्शिका में, अवधारणाओं को परिवेश से जोड़ा गया है ताकि विद्यार्थियों को यह आभास हो सके कि उनके इर्द–गिर्द कितना कुछ सीखने को है। इससे बच्चों को स्कूल की पढ़ाई ज्यादा व्यावहारिक लगने लगती है। इस प्रकार, हमारी यह कोशिश रही है कि घर और स्कूल के बीच जो दूरी है, उसे कम किया जाये।

इस प्रयोग में शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक की होती है और वह विद्यार्थियों के साथ

मिलकर आस–पास के परिवेश एवं समाज को समझने का प्रयास करते हैं। इससे प्रश्न पूछने, सिलसिलेवार सोचने तथा संगठित रूप से काम करने की क्षमताओं का भी विकास होता है। जानकारियों का विश्लेषण करते समय शिक्षक अपनी रचनात्मकता के आधार पर चर्चा को अनेक दिशाओं में मोड़ सकते हैं; जैसे – आधुनिक विकास की अवधारणा, स्थानीय व्यवस्था, पारम्परिक कौशल एवं ज्ञान–परंपरा, इत्यादि को भी शिक्षण–बिंदुओं के अन्तर्गत लाया जा सकता है। पाठ्यपुस्तकों से शिक्षण में शिक्षक की रचनात्मकता थम–सी जाती है। शिक्षक को इस विधि में पूरी छूट मिलती है कि वह विषयगत ज्ञान कराते समय अन्य क्षमताओं एवं समझ का भी विकास करे। यद्यपि इस विधि का मुख्य लक्ष्य इतिहास की समझ विकसित करना है फिर भी इससे गणित, विज्ञान, चित्रकला, भाषा, भूगोल, आदि का शिक्षण भी स्वाभाविक ढंग से होता जाता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक की अहम् भूमिका है और उसकी मौलिकता, सृजनात्मकता तथा पहल–शक्ति (initiative) का विशेष महत्त्व है।

इससे पहले हमने **'जौनपुर के पेड़–पौधे'** नाम से एक और मार्गदर्शिका लिखी थी। उसका उद्देश्य भी आस–पास के परिवेश से भाषा–शिक्षण करवाना था। इस बार इतिहास के साथ–साथ भाषा की समझ देने का प्रयास है।

हालांकि यह प्रयोग टिहरी गढ़वाल के जौनपुर क्षेत्र में किया गया है, परन्तु इस शिक्षक–मार्गदर्शिका का उपयोग अन्य स्थानों पर भी हो सकता है। स्थानीय शिक्षक आसानी से इस विधि को अपना सकते हैं ।

बुद्ध पूर्णिमा, वैशाख शुक्ल 2060
16 मई, 2003

पवन कुमार गुप्ता

इतिहास की समझ

हम बच्चों को इतिहास आज तक एक विषय के रूप में पढ़ाते रहे हैं जिसके अन्तर्गत अक्सर कुछ महापुरुषों (सन्तों, महात्माओं), राजाओं, सम्राटों, स्वतन्त्रता संग्राम तथा उसमें भाग लेने वाले क्रान्तिकारियों के बारे में जानकारी देते हैं या फिर कुछ घटनाओं–आक्रमणों, युद्धों, इत्यादि का विवरण देते हैं। इससे बच्चे अक्सरः

- इतिहास को अपने जीवन से जोड़ नहीं पाते;
- इतिहास का प्रयोजन समझ नहीं पाते;
- इतिहास क्या है, इसकी भी समझ नहीं बन पाती।

यदि शिक्षक की योग्यता अच्छी है तो वह ज्यादा से ज्यादा, इतिहास को एक अच्छी और रोचक कहानी के रूप में बच्चों के सामने रख देता है। कहानियों की अपनी उपयोगिता होती है, परन्तु इतिहास पढ़ाने का प्रयोजन इससे भिन्न है, ज्यादा व्यापक है।

हम अगर बच्चों को इतिहास की उपयोगिता बता सकें, उनकी अपनी जिन्दगी से इतिहास के सम्बन्ध को दिखा सकें तो बच्चों में मौलिकता एवं सृजनात्मकता का विकास होगा,यही हमारा उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें कुछ पृष्ठभूमि तैयार करनी पड़ेगी। यहाँ सुझाव के रूप में हमारे कुछ प्रस्ताव हैं;

शिक्षकों से निवेदन है कि वे इन प्रस्तावों को पहले अपने स्तर पर और अपने अधिकार पर जाँच लें, उसके बाद इन्हें बच्चों को समझाने का प्रयास करें।

अध्यापक / पाठक इनके माध्यम से हमारी सोच, हमारे विचारों से परिचित हो सकेंगे।

शिक्षकों से निवेदन है कि वे इन प्रस्तावों को पहले अपने स्तर पर और अपने अधिकार पर जाँच लें, उसके बाद इन्हें बच्चों को समझाने का प्रयास करें। पहले अपनी समझ बनायें, फिर बच्चों को परिस्थिति अनुरूप पढ़ाएं।

बदलाव सृष्टि का शाश्वत नियम :

वर्तमान स्थिति को समझने के लिये, विगत की समीक्षा मदद करती है और भविष्य की योजना बनाने में भी सहायता मिलती है। हम कह सकते हैं कि इतिहास की पढ़ाई इसी प्रयोजन से की जाती है। हमारा, हमारे परिवार का, हमारे गाँव जंगल का, तकनीक का, उपकरणो, इत्यादि का भी इतिहास होता है जिससे हम अपने आज को समझ सकते हैं।

सारी सृष्टि में हर क्षण, हर स्थिति में बदलाव तो होता ही रहता है। हर स्थिति में बदलाव होता है, जो एक नयी स्थिति को जन्म देता है। बदलाव की एक गति होती है। बदलाव एक दिशा में, अपनी एक स्वाभाविक गति से होता ही रहता है।

दिशा और गति – बदलाव में ये दो प्रमुख बातें हैं। हमें यदि बदलाव को समझना है तो उसकी दिशा और गति को समझना होगा – बदलाव की दिशा और बदलाव की गति। बदलाव विगत में भी हुआ है और वर्तमान में भी हो ही रहा है। वर्तमान स्थिति को समझने के लिये विगत में हुए अनेकों बदलावों की गतियों और उन गतियों की

सारी सृष्टि में हर क्षण, हर स्थिति में बदलाव तो होता ही रहता है। हर स्थिति में बदलाव होता है, जो एक नयी स्थिति को जन्म देता है। दिशा और गति – बदलाव में ये दो प्रमुख बातें हैं।

दिशाओं का अध्ययन इतिहास के जरिये हम करते हैं। कई बार विगत में हुई कोई घटना इस बदलाव की स्वाभाविक गति और दिशा में बड़ा या आकस्मिक परिवर्तन ला देती है, जिससे बदलाव की दिशा बदल जाती है और गति में कमी या बढ़ोतरी हो जाती है। आज जो इतिहास हम पढ़ाते हैं, उसे भी इस दृष्टि से समझा जा सकता है। शासन में हुआ कोई परिवर्तन, कोई आन्दोलन या कोई आक्रमण – ये घटनायें बदलाव की स्वाभाविक गति और दिशा में एक बड़ा बदलाव लाते हैं। इन्हीं बातों का अध्ययन इतिहास में होता है, परन्तु इसके बावजूद चूंकि इन मूलभूत बातों पर हमारा ध्यानाकर्षण नहीं करवाया जाता इसलिये हम अपने आज को, आज के सामान्य जीवन को इतिहास (विगत स) जोड़कर नहीं देख पाते। अगर हम ऐसा करेंगे तो वर्तमान में हमारी जो भी स्थिति है, वह वैसी क्यों है, इसे समझने में आसानी होगी। इसके अलावा, अगर अपनी स्थिति में, भविष्य में हम कोई परिवर्तन लाना चाहते हैं, तो क्या करने से (कैसा करने से) उसकी दिशा और गति में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है, इसकी समझ भी इतिहास से मिल सकती है।

शिक्षण के दौरान बच्चों के मस्तिष्क में यह बात बिठाने की आवश्यकता है कि परिवर्तन तो सभी अवस्थाओं में तथा हर स्थिति में होता ही रहता है।

बच्चों में परिवर्तन को देखने की समझ कैसे विकसित की जाए :

प्रकृति की सभी अवस्थाओं तथा हर स्थिति में हर क्षण बदलाव होता ही रहता है।

कई बार विगत में हुई कोई घटना इस बदलाव की स्वाभाविक गति और दिशा में बड़ा या आकस्मिक परिवर्तन ला देती है, जिससे बदलाव की दिशा बदल जाती है और गति में कमी या बढ़ोतरी हो जाती है।

आज हम जैसे भी हैं, विगत में हुए बदलावों की वजह से हैं।

शिक्षकों को बच्चों के सामने सन्दर्भ रखकर, इस बात को चर्चा द्वारा समझाने का प्रयास करना है कि प्रकृति में हर क्षण बदलाव होता ही रहता है। जैसे –

- हमारे (मनुष्य के) शरीर में बदलाव होता ही रहता है।
- जानवरों के शरीर में भी बदलाव होता रहता है।
- पेड़–पौधों में भी बदलाव होता रहता है।
- हवा, पानी, मिट्टी; इत्यादि में भी बदलाव होता रहता है।

ये बदलाव होते ही रहते हैं। हालांकि इनकी गति कभी कम कभी तेज होती है।

(बच्चों से अध्यापक प्रश्न पूछ सकते हैं कि प्रकृति के किन–किन अवयवों में तुम परिवर्तन देखते हो। उत्तर में प्राप्त अवयवों के नाम लेखबद्ध कर लिए जाएं। प्रत्येक अवयव पर बारी–बारी से गहन चर्चा की जाए। प्राप्त उत्तरों को लेखबद्ध करके अंत में छात्रों को सुव्यवस्थित रूप से अपनी नोट बुक में लिखने के लिए कहा जा सकता है।)

इनके अलावा, हम अन्य प्रकार के बदलावों को भी देख सकते हैं; जैसे –

- मौसम में होने वाले बदलाव
- हमारी मनःस्थिति में होने वाले बदलाव
- हमारी आर्थिक स्थिति में होने वाले बदलाव

- हमारे सम्बन्धों में होने वाले बदलाव (मित्रों के साथ, रिश्तेदारों के साथ, इत्यादि)
- हमारी पसन्द, नापसन्दगी में होने वाले बदलाव

शिक्षक प्रश्न पूछकर या कभी कुछ उदाहरण देकर बच्चों का ध्यान हर क्षण चारों तरफ होने वाले बदलावों की तरफ ले जा सकते हैं। कोशिश यह होनी चाहिए कि बच्चे ही खुद बदलावों को देखने लगें। जब वे बात को पकड़ लेंगे तो वे स्वयं उदाहरण से स्पष्ट करने लगेंगे।

इस बात पर भी ध्यानाकर्षण करवाना अच्छा रहेगा कि कई बार बदलाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ते। हमें इन बदलावों का आभास कुछ समय के बाद ही होता है; जैसे – शरीर के अन्दर बदलाव की प्रक्रिया चलती ही रहती है – हृदय का धड़कना, फेफड़ों का काम करना, नाड़ी का चलना, खून का दौड़ना, खाना पचना, इत्यादि। परन्तु हमें हर समय यह सब महसूस नहीं होता। ध्यान देते हैं तो मालूम होने लगता है। मनुष्य के शरीर को रोजाना देखने पर बदलाव का अहसास नहीं होता, परन्तु एक अन्तराल के बाद किसी से मिलने पर या पुरानी फोटो देखने से हमें शरीर में हुए बदलावों का पता चलता है। यहाँ ध्यानाकर्षण करवाने की जरूरत है कि यह बदलाव हर क्षण हो रहा है।

इसी प्रकार, पेड़–पौधों में भी बदलाव हो रहा होता है जिसका पता एक अन्तराल के बाद चलता है। परन्तु हर क्षण वे मिट्‌टी, हवा, पानी, सूरज की गर्मी और रोशनी से

कई बार बदलाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ते। हमें इन बदलावों का आभास कुछ समय के बाद ही होता है; जैसे – शरीर के अन्दर बदलाव

कुछ–न–कुछ आदान–प्रदान कर ही रहे होते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान भी उनमें हर क्षण बदलाव होता रहता है।

यह बदलाव जड़ वस्तुओं में भी होता है। पानी से, हवा से, सूरज की गर्मी से – पत्थर, चट्टान, पहाड़, इत्यादि में भी हर क्षण सूक्ष्म बदलाव होते ही रहते हैं। तभी तो नदी में पड़े पत्थर पहाड़ों से मैदानों तक की लम्बी यात्रा तय करते हुए पानी से घर्षण के कारण धीरे–धीरे चिकने हो जाते हैं। हजारों, लाखों वर्ष पहले जहाँ समुद्र था, वहाँ आज ऊँचे पर्वत दिखाई पड़ते हैं। इन बातों का पता पहाड़ों के पत्थर, मिट्टी, चट्टानों का अध्ययन करके लगाया जाता है।

इसी प्रकार हमारे घर, स्कूल के मकान, साजो–सामान, किताब, पेन्सिल, कुर्सी, टेबल में भी बदलाव होते रहते हैं। इस बात को समझाने के लिए अध्यापक बच्चों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकते हैं कि अगर बदलाव नहीं होता तो हमें इन जड़ वस्तुओं की मरम्मत या देख–भाल करने की जरूरत नहीं पड़ती।

इस प्रकार शिक्षक तरह–तरह से बच्चों का ध्यानाकर्षण इस बात पर करा सकते हैं कि हर वस्तु में, हर अवस्था (चारों – पदार्थ यानी हवा, मिट्टी, धातु, पानी, इत्यादि; प्राणावस्था यानी पेड़–पौधे; जीवावस्था यानी पशु–पक्षी और ज्ञानावस्था यानी मनुष्य) में हर क्षण बदलाव होता ही रहता है – चाहे वह बदलाव कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो।

हर वस्तु में, हर अवस्था हर क्षण बदलाव होता ही रहता है – चाहे वह बदलाव कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो।

कुछ स्थितियों में बदलाव अल्प समय में ही नजर आने लगता है; कुछ बदलाव लंबे अंतराल के बाद दिखाई पड़ते हैं।

इस बात को समझाते वक्त अलग–अलग तरह के बदलावों की सूची बनाई जा सकती है। किसी खास वस्तु में होने वाले बदलाव के बारे में बच्चों को सोचने को दिया जा सकता है। इस प्रक्रिया के दौरान मौखिक एवं लिखित गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं। बच्चों की छोटी–छोटी टोलियाँ बनाकर सामूहिक गतिविधियाँ भी करवाई जा सकती हैं। यह सब शिक्षक की अपनी इच्छा, समय की उपलब्धता, बच्चों की संख्या एवं उनकी उम्र को ध्यान में रखकर करवाया जायेगा।

परन्तु मुख्य उद्देश्य की पूर्ति तब होगी जब बच्चों को यह समझ आ जाये कि चारों तरफ, हर दिखाई देने वाली वस्तु में एवं हर स्थिति में हर क्षण कई प्रकार के बदलाव हो ही रहे हैं।

आगे चलकर इन परिवर्तनों का संबंध हम इतिहास से बैठा पायेंगे। पहले बच्चों को परिवर्तन समझ आ जाये और यह समझ आ जाये कि हर अवस्था, हर स्थिति में बदलाव होता ही रहता है।

संक्षेप में :

- समस्त प्रकृति की इकाइयों में यानी सृष्टि की चारों अवस्थाओं में हर क्षण बदलाव होते ही रहते हैं।
- हर स्थिति में भी परिवर्तन होता ही रहता है।

- इन परिवर्तनों के कारण ही आज हम जहाँ हैं, जैसे भी हैं, वहाँ तक पहुँचे हैं।
- इन परिवर्तनों के माध्यम से हम कल्पना कर सकते हैं कि भविष्य कैसा हो सकता है।

अपने अतीत की समझ यानी इतिहास :

हम जो कुछ भी वर्तमान में करते हैं, उसका सम्बन्ध विगत से होता है। इतिहास की समीक्षा करके वर्तमान की समझ बनती है और वर्तमान को समझकर भविष्य की योजना बनायी जा सकती है।

- हर व्यक्ति स्वयं को समझना चाहता है। बच्चों से सवाल पूछा जा सकता है कि हमें कोई भी वस्तु क्यों अच्छी लगती है और क्यों बुरी लगती है?

चाहे वह खाने की चीज हो, पहनने की चीज हो या अन्य किसी उपयोग की चीज हो– सभी लोगों की पसन्द एक जैसी नहीं होती। किसी को कुछ पसन्द होता है तो किसी को कुछ। ऐसा क्यों होता है? बच्चों को इन बातों पर सोचने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अगर हम ठीक से चर्चा को आगे बढ़ायें तो इससे बच्चे निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचेंगे–

- हमारी सबकी अपनी–अपनी पसन्द, नापसन्द होती है
- हमें कुछ चीजें अच्छी लगती हैं, कुछ अच्छी नहीं लगती
- प्रत्येक की पसन्द, नापसन्द अलग–अलग हो सकती है

हम जो कुछ भी वर्तमान में करते हैं, उसका सम्बन्ध विगत से होता है। इतिहास की समीक्षा करके वर्तमान की समझ बनती है और वर्तमान को समझकर भविष्य की योजना बनायी जा सकती है।

इसी प्रकार इस पर भी सोचा जा सकता है एवं चर्चा भी करवायी जा सकती है कि हम सबको कई प्रकार के काम करने अच्छे लगते हैं; कुछ काम ऐसे होते हैं जिन्हें करना हमें अच्छा नहीं लगता; जैसे – किसी को कोई खेल अच्छा लगता है, किसी को गाना, किसी को चित्र बनाना, किसी को गप्पें मारना, चुटकुले सुनाना, गणित के सवाल करना, लिखना, सोचना, इत्यादि – सबको अलग–अलग कार्य पसन्द या नापसन्द होते हैं।

बच्चों से एक गतिविधि करवाई जा सकती है – **साठ साल से अधिक उम्र के व्यक्तियों एवं 20–30 वर्ष के युवाओं की अभिरुचियों की अलग–अलग सूची बनाना। अभिरुचि की भिन्नताओं के कारणों पर अच्छी चर्चा चल सकती है।**

फिर बातचीत को उस तरफ मोड़ा जा सकता है कि हम जो कुछ भी आज सोचते हैं, पसन्द–नापसन्द करते हैं, व्यवहार करते हैं, काम को एक खास तरीके से करते हैं (उठने, बैठने का तरीका, खान–पान का तरीका, इत्यादि) उसका सम्बन्ध हमारे अतीत से भी होता है; जैसे – हम जो खाना खा–पीकर बड़े हुए, उसी से हमारी पसन्द, नापसन्द निर्धारित होती है। कोई नया स्वाद हमें शुरू में पसन्द नहीं आता। हमें धीरे–धीरे इनकी आदत पड़ती है। हमारी आदतों का सम्बन्ध भी हमारे अतीत से होता है; अच्छी और बुरी, दोनों आदतों का।

जिस वातावरण, घर–परिवार, आस –पड़ोस, गाँव–शहर, समाज में हम बड़े होते

हम जो कुछ भी आज सोचते हैं, पसन्द–नापसन्द करते हैं, व्यवहार करते हैं, काम को एक खास तरीके से करते हैं उसका सम्बन्ध हमारे अतीत से भी होता है

हैं और जैसा खान–पान, उठना–बैठना, व्यवहार वहाँ होता है, उन सबसे हम प्रभावित होते रहते हैं और इसका असर हमारी आज की पसन्द–नापसन्द पर पड़ता है।

[एक ही स्थिति का अलग–अलग व्यक्तियों या वस्तुओं पर अलग–अलग प्रभाव पड़ सकता है; जैसे एक ही परिवार के दो भाइयों या बहनों पर घर–परिवार का अलग–अलग प्रभाव हो सकता है। एक भाई पर घर का सकारात्मक और दूसरे पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।]

हमारे शरीर की आज की अवस्था का संबंध भी हमारे अतीत से होता है। जिन लोगों ने बचपन में और जवानी में पौष्टिक खाना खाया होता है, शारीरिक श्रम या कसरत, व्यायाम किया होता है, उनका शरीर ज्यादा मजबूत और सुडौल दिखाई पड़ता है। जिन लोगों ने अतीत में अपने स्वास्थ्य पर, शारीरिक व्यायाम पर, खान–पान पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया होता, उनका शरीर कमजोर हो जाता है।

ये सब कुछ जो आज हम कर रहे होते हैं (खान–पान, पहनावा, व्यवहार, इत्यादि), जिन तरीकों का हम उपयोग करते हैं (खेती करने के तरीके, बीज, पेड़–पौधे लगाने, संरक्षित करने के तरीके, मकान बनाने के तरीके, आतिथ्य सत्कार के तरीके, कपड़े पहनने, उठने–बैठने के तरीके, इत्यादि), या जिन उपकरणों (ट्रैक्टर, हल, चक्की, टेलीविजन, फोन, गाड़ी, हवाई जहाज, इत्यादि) का हम इस्तेमाल करते हैं, ये सभी कुछ हमेशा से ऐसे

एक ही स्थिति का अलग–अलग व्यक्तियों या वस्तुओं पर अलग–अलग प्रभाव पड़ सकता है

ही नहीं थे। इन तौर–तरीकों, साधनों, उपकरणों में भी बदलाव होते रहते हैं। अतीत में अनेकों बार, अनेकों कारणों और प्रभावों की वजह से ये बदलाव हुए हैं। इन सबको समझने में इतिहास हमारी मदद कर सकता है।

7वीं–8वीं कक्षा के छात्रों से इस तरह की गतिविधि करवाई जा सकती है– बड़े–बुजुर्गों से पूछकर पिछले 40–50 सालों में खेती के तौर–तरीकों में आए बदलावों की जानकारी हासिल करके उन्हें सूचीबद्ध करना और उन मुद्दों पर चर्चाएं आयोजित करना।

संक्षेप में :

इच्छाओं और व्यवहार का संबंध हमारे अतीत से होता है। उपकरणों, तौर–तरीकों में भी बदलाव होते रहते हैं।

जैसे व्यक्ति की अपनी पसन्द, नापसन्द, **मजबूती**, कमजोरी, काम करने के तरीके होते हैं, ठीक उसी तरह अलग–अलग समाजों के भी होते हैं। हर समाज के लोगों में कुछ समानतायें होती हैं, जिससे उस समाज की पहचान बनती है। एक समाज के लोग लगभग एक प्रकार का खान–पान करते हैं, पहनावा पहनते हैं, खास प्रकार के मकानों में रहते हैं, खास प्रकार के काम–धन्धे या खेती–पशुपालन के तरीके अपनाते हैं, बोली–भाषा बोलते हैं, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने के उनके अपने ढंग होते हैं, नाच–गाने, मनोरंजन एवं न्याय के भी अपने तरीके होते हैं – जो उसे अन्य समाजों से अलग पहचान देते हैं। इसी को हम संस्कृति कहते हैं। इनमें भी अतीत में

तौर–तरीकों, साधनों, उपकरणों में भी बदलाव होते रहते हैं। अतीत में अनेकों बार, अनेकों कारणों और प्रभावों की वजह से ये बदलाव हुए हैं। इन सबको समझने में इतिहास हमारी मदद कर सकता है।

बदलाव होते ही रहा है और धीरे–धीरे हमें वर्तमान में जो दीखता है, वहाँ तक पहुँचे हैं।

[उदाहरण के लिए, पिछले 20–25 सालों में विवाह–संबंधी आयोजनों में आए परिवर्तनों की ओर भी ध्यानाकर्षण करवाया जा सकता है।]

हम वर्तमान को देखते हैं तो पाते हैं कि हमारे समाज में बहुत सारे लोग बहुत सारे कौशल (खाना बनाना, कपड़े बुनना, खेती करना, उपचार करना, इत्यादि) जानते हैं। यह ज्ञान उन्हें अतीत में अपने पूर्वजों से, परम्परा से मिला है। इस ज्ञान और कौशल में भी लगातार बदलाव होते रहा है। हमारे पूर्वजों ने बहुत–सारे प्रयोग किये होंगे। उनमें से कुछ सफल, कुछ असफल हुए होंगे। कोई दवा काम की होगी, किसी दवा ने काम नहीं किया होगा – इन सब प्रयोगों से वे लगातार सीखते गये होंगे, अपनी समझ बढ़ाते गये होंगे। इसी क्रम में वे आज जहाँ हैं, वहाँ पहुँचे हैं। इन सब का अध्ययन भी इतिहास से होता है। इससे हमें अपने आज को समझने में मदद मिलती है। ठीक से समझ बने तो मन में ताकत का अहसास होता है क्योंकि पूर्वजों की प्रयोगधर्मिता के प्रति सम्मान और गौरव का भाव पैदा होता है।

कभी इस बदलाव की प्रक्रिया में, इस सीखने–समझने की प्रक्रिया में व्यवधान आता है और कभी–कभी इसकी गति तेज होती है। जैसे आजकल परम्परागत ज्ञान और कौशल (जैसे स्वस्थ रहने के परम्परागत तरीके, जड़ी–बूटियों का ज्ञान, पारम्परिक कृषि के

तरीके, इत्यादि) के क्षेत्र में गति धीमी है। इस क्षेत्र में प्रयोग कम हो रहे हैं। इन सब के कारण भी हम इतिहास से समझ सकते हैं।

हमारे पारंपरिक ज्ञान पर आधुनिक ज्ञान–विज्ञान क्यों भारी पड़ता जा रहा है, इस तरफ भी बात चलाई जा सकती है। वे चर्चा के माध्यम से वास्तविकता को स्वयं समझ सकते हैं।

आज हमारे समाज की जो भी पहचान है, जिसमें उक्त सभी कुछ – उसकी अच्छाइयों, बुराइयों, ताकत और कमजोरी के साथ – का सम्बन्ध समाज के अतीत से होता है। आज जहाँ हम हैं, वहाँ अचानक नहीं पहुँच गये। बदलाव की एक प्रक्रिया के तहत ही हम आज यहाँ पहुँचे हैं। इसलिये आज को समझने के लिये हमें अपने अतीत को भी समझना जरूरी होता है।

इससे यह सिद्ध किया जा सकेगा कि हमारे आज का सम्बन्ध हमारे अतीत से होता है। इस बात को फिर इतिहास से जोड़ा जा सकता है। अतीत की समझ यानी इतिहास। हम अपने वर्तमान को समझने के लिए अपने इतिहास में झाँकते हैं; इतिहास की समीक्षा करके अपने वर्तमान को समझते हैं तथा भविष्य की योजना बनाते हैं।

उदाहरण : जैसे कि आज हम पाते हैं कि भारत के पढ़े–लिखे लोग अंग्रेजी भाषा, पहनावा (जैसे सूट, पैंट, टाई), इत्यादि को प्रतिष्ठा की नजर से देखते हैं एवं इनके प्रति आकर्षण रखते हैं। यह मोटे तौर पर वर्तमान में हमारे समाजों की स्थिति है। अगर हम इसे

बदलाव की एक प्रक्रिया के तहत ही हम आज यहाँ पहुँचे हैं। इसलिये आज को समझने के लिये हमें अपने अतीत को भी समझना जरूरी होता है।

समझने जायेंगे तो इतिहास हमारी मदद कर सकता है। इस बात का सीधा सम्बन्ध भारतवर्ष में लगभग 200 वर्षों (1757–1947) तक अंग्रेजों के राज से रहा है। जिन देशों में अंग्रेजों की जगह फ्रांसिसियों ने या स्पैनिश लोगों ने राज किया, वहाँ पर फ्रांसिसी और स्पैनिश भाषा उसी तरह बोली जाती है जैसे हमारे यहाँ अंग्रेजी। तो इससे पता चलता है कि अंग्रेजी और अंग्रेजों के तौर–तरीकों के प्रति हमारे आकर्षण के पीछे इतिहास की एक भूमिका रही है। इस बात को आगे बढ़ाया जा सकता है। बच्चों को यह सोचने के लिये प्रेरित किया जा सकता है कि अगर भारत गुलाम न हुआ होता तो भारत के लोगों का अंग्रेजी भाषा, पहनावे, इत्यादि के प्रति कैसा रवैया होता?

अध्यापक अपने ज्ञान–समझ के आधार पर अतीत में और पीछे जा सकते हैं और बच्चों को यह बताने का प्रयास कर सकते हैं कि यहाँ जो विभिन्न काल–खंडों में यूनानी, शक, हूण, ईरानी (पर्शियन) आए हैं, उनका हमारे देश के किस क्षेत्र में क्या–क्या प्रभाव देखने को मिलता है।

अतीत को समझने से हममें इस बात की समझ भी बन जाती है कि हम किस परिस्थिति में किस प्रकार का व्यवहार करते हैं। इससे भविष्य की योजना बनाने में मदद मिलती है।

जैसे– जब हम भारतवर्ष के अतीत को देखते हैं तो पाते हैं कि भारत विविधताओं का देश है। यहाँ अलग–अलग भौगोलिक नदी–घाटियों की संस्कृतियाँ रही हैं। महाभारत के जमाने में भी करीब 100 अलग–अलग

अगर भारत गुलाम न हुआ होता तो भारत के लोगों का अंग्रेजी भाषा, पहनावे, इत्यादि के प्रति कैसा रवैया होता?

राजाओं ने महाभारत के युद्ध में हिस्सा लिया। ये राजा अलग–अलग आंचलिक संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सारे अंचल स्वायत्त राज्य थे, फिर भी किसी न किसी प्रकार से कुरु वंश से जुड़े भी थे। कुरु राज्य को अगर एक केन्द्र मानें भी तो वह व्यवस्था आज की केन्द्रीकृत व्यवस्था से अलग दीखती है। इससे यह समझ बनती है कि केन्द्रीकृत व्यवस्था का आज जो स्वरूप भारत और विश्वभर में दिखाई देता है, उससे अलग भी कोई कल्पना हो सकती है और संभवतः ऐसी अलग व्यवस्था हमारे स्वभाव से अधिक अनुकूल बैठती हो।

इतिहास से इस प्रकार समझ बनाने से हमें भविष्य की कल्पना और योजना बनाने में मदद मिल सकती है।

[शिक्षक किस उम्र के बच्चों को पढ़ा रहे हैं, इस बात का ध्यान रखना जरूरी है। यह मार्गदर्शिका शिक्षकों की मदद के लिये बनाई गयी है। इसे समझकर वे फिर इसे अपनी परिस्थिति के अनुसार, कितनी गहराई तक बच्चों को ले जाना है, यह तय कर सकते हैं।]

इतिहास अतीत को देखने का एक दृष्टिकोण है :

इतिहास एक जैसा नहीं होता। अतीत को अलग–अलग दृष्टिकोणों से देखा–समझा जा सकता है। सही समझ के लिये अधिक से अधिक दृष्टिकोणों का अध्ययन और फिर स्वयं के विवेक का उपयोग करना होगा।

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ अलग–अलग भौगोलिक नदी–घाटियों की संस्कृतियाँ रही हैं।

सन् 2000 के आस–पास, इतिहास को लेकर पूरे भारत में एक बड़ी बहस छिड़ी थी, जब भारत सरकार इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में कुछ बदलाव ला रही थी। इसी प्रकार की बहस, उसी समय, जापान में भी चल रही थी। समय–समय पर इतिहास को लेकर इस तरह की बहसें चला करती हैं। प्रायः लोग अपने उद्देश्य और अपनी दृष्टि से इतिहास को लिखते हैं। अंग्रजो ने भारत का इतिहास एंव अन्य दुनिया का इतिहास भी अपनी ही दृष्टि से लिखा है, जिसे हम आज तक पढ़ते आ रहे हैं। किस काल–खण्ड में इतिहास लिखा जा रहा है, इससे भी इतिहास लेखन प्रभावित होता है। प्रायः तो लोग इस बात की ओर सचेत भी नहीं होते कि एक ही घटना, प्रक्रिया अलग–अलग तरह देखी/समझी जा सकती है। हमारा प्रयोजन ही हमारे नजरिये को तय करता है। या यह भी होता है कि हमारी दृष्टि ही प्रयोजन को तय करने लगे।

इन बातों को बहुत ही सरल ढंग से बच्चों को समझाया जा सकता है। जौनपुर (टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड) क्षेत्र में अक्सर एक घर या एक मौहल्ले या गाँव से 3–4 बच्चे एक साथ स्कूल पैदल आते हैं। घर/मौहल्ले/गाँव से स्कूल तक की यात्रा में 15–20 मिनट से लेकर एक–डेढ़ घंटे भी लग सकते हैं। इन साथ आने वाले बच्चों को, अलग–अलग इस यात्रा का विवरण लिखने को दिया जा सकता है। उनसे कहा जाए कि जब पाठशाला के लिए वे चले और जब तक वे पाठशाला पहुँचे, उस बीच उन्होंने क्या–क्या देखा, सोचा, समझा; जिन चीजों की उन्हें

अतीत को अलग–अलग दृष्टिकोणों से देखा–समझा जा सकता है। सही समझ के लिये अधिक से अधिक दृष्टिकोणों का अध्ययन और फिर स्वयं के विवेक का उपयोग करना होगा।

याद आई, जिन चीजों का उन्हें अनुभव हुआ, वह सब लिखें। पशु, पक्षी से लेकर घोड़ा, गधा, स्कूटर, साइकिल, गाड़ी, इत्यादि जो कुछ भी उन्होंने देखा, सुना, सूंघा, छुआ, सोचा, इत्यादि, उसका विवरण लिखें।

बच्चों को लिखने से पहले, घटनाक्रम याद करने के लिये, महसूस करने के लिये कुछ समय दिया जा सकता है। (मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए भी इस घटना का उपयोग किया जा सकता है। यह गतिविधि बहुत ही अच्छी बन सकती है। इससे बच्चों की स्मरण शक्ति, अवलोकन करने की शक्ति तथा लिखने और अभिव्यक्त करने की योग्यता भी विकसित होगी।) जब सभी बच्चे अपनी बात लिख लें तो उन्हें बारी–बारी से कक्षा में जोर से पढ़ने को कहा जा सकता है। सभी बच्चे जब अपनी लिखी बात को पढ़ लें तो शिक्षक इस बात पर ध्यानाकर्षण करवा सकते हैं कि एक ही यात्रा – जो बच्चों ने साथ–साथ की – का विवरण एक दूसरे से कितना भिन्न है। और सबसे महत्वपूर्ण बात, जिस पर ध्यानाकर्षण करवाना चाहिये, वह यह कि सभी बच्चों का विवरण अलग–अलग होते हुए भी, किसी ने कोरी कल्पना या झूठ नहीं लिखा है।

बच्चों के बीच इस मुद्दे पर एक बहुत अच्छी चर्चा चलाई जा सकती है – विवरण में यह भिन्नता क्यों है?

इससे यह निष्कर्ष अपने आप निकल जायेगा कि एक ही घटना या प्रक्रिया को हम अलग–अलग ढंग से देख सकते हैं। किसी एक बच्चे के विवरण को सच और बाकी के

हमारा प्रयोजन ही हमारे नजरिये को तय करता है। या यह भी होता है कि हमारी दृष्टि ही प्रयोजन को तय करने लगे।

विवरण को झूठ नहीं कहा जा सकता। किसी ने एक चिड़िया की आवाज सुनी या पशु को देखा, बाकियों ने नहीं देखा – यह संभव हो सकता है। जिन्होंने नहीं देखा या सुना, उनके विवरण से यह सिद्ध नहीं होता कि उस यात्रा के दौरान वे पशु या पक्षी वहाँ नहीं थे। साथ–साथ यह भी नहीं कहा जा सकता कि जिन्होंने पशु–पक्षी के बारे में अपने विवरण में नहीं लिखा, वे झूठ बोल रहे हैं।

इस चर्चा पर समय लगाकर तरह–तरह से अलग–अलग विवरणों का विश्लेषण और एक–दूसरे के साथ तुलना करने की प्रक्रिया में बच्चों को बहुत–सारी बातें समझायी जा सकती हैं या उन पर ध्यानाकर्षण करवाया जा सकता है। संक्षेप में, निम्न निष्कर्ष निकल सकते हैं–

- सभी विवरण एक–दूसरे से अलग होते हुए भी सभी सच्चे हैं।
- किसी भी घटना, प्रक्रिया को समझने के लिये एक विवरण (दृष्टिकोण) पूर्ण नहीं होता।

इतिहास के जरिये हम विगत में हुए परिवर्तनों, घटनाक्रमों, घटनाओं को समझते हैं :

इन घटनाओं, घटनाक्रमों के कारणों एवं उनके प्रभावों की समझ हमें इतिहास से होती है। इन परिवर्तनों में जिन लोगों की भूमिका रही, उनके बारे में भी हम समझ बनाते हैं।

जैसा पहले ही समझा जा चुका है कि हमारे चारों तरफ हर क्षण विभिन्न स्तरों पर,

निष्कर्ष अपने आप निकल जायेगा कि एक ही घटना या प्रक्रिया को हम अलग–अलग ढंग से देख सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के बदलाव होते ही रहते हैं। इतिहास उन घटनाओं, प्रक्रियाओं, घटनाक्रमों को समझने का प्रयास करता है, जहाँ से बड़े या यकायक बदलाव आये।

जैसे कोई बड़ा अकाल, बाढ़, भूकम्प, अनावृष्टि या अतिवृष्टि; आन्दोलन, कोई युद्ध, सत्ता परिवर्तन; किसी का जन्म या मृत्यु, किसी समाज के जीवन में बड़ा बदलाव ला सकती है।

हमारे घरों में, अतीत में किसी का जन्म, किसी की मृत्यु, कोई बड़ी बीमारी, किसी का विवाह और एक नये सदस्य का परिवार में आना या नये परिवेश में जाना, किसी का कोई नया (काम या नौकरी) करना, घर से बाहर जाकर रहना, पढ़ाई करना, इत्यादि कोई भी घटना, परिवार में एक बड़ा बदलाव ला सकती है।

हम पाते हैं कि इनमें से कोई भी घटना कभी–कभी परिवार में एक बड़ा बदलाव का कारण बनती है। शादी के बाद किसी नये सदस्य की वजह से या किसी सदस्य के घर से बाहर काम करने की वजह से दूसरे स्थान का प्रभाव (भाषा का, पहनावे का, खान–पान, रहन–सहन का) परिवार पर पड़ने लगता है। कभी कोई सदस्य नया उपकरण (टेलिविज़न, फोन, गाड़ी, ट्रैक्टर, इत्यादि) लेकर आ जाता है और इस कारण परिवार के जीवन पर बड़ा असर पड़ता है। बच्चों से तरह–तरह के व्यक्तिगत उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट कराई जा सकती है।

जब शादी होती है, जो कि एक घटना है, तब या तो परिवार में एक नया सदस्य आता है या कोई सदस्य परिवार से जाता है। दोनों ही स्थितियों में इस घटना से एक परिवर्तन आता है। जिस गति और दिशा में परिवार शादी से पहले चल रहा था, शादी के बाद उसकी दिशा और गति में परिवर्तन आता है। कोई नई लड़की जब घर में आती है तो साथ में नई जानकारी (खाना बनाने के तरीके, अन्य काम करने के तरीके, इत्यादि), कभी–कभी नई बोली–भाषा, व्यवहार के तरीके भी साथ लाती है जो परिवार में एक बड़ा परिवर्तन ला सकते हैं।

इसी प्रकार, अन्य घटनाओं से भी बदलाव आता है। इन बातों पर सोचा जा सकता है; चर्चा करवायी जा सकती है।

कभी–कभी नये उपकरणों की वजह से बदलाव आता है। जैसे घर के बड़े–बूढ़े, बच्चों को कहानियाँ सुनाया करते थे, परिवार के लोग आपस में बातें किया करते थे। फिर एक घटना घटती है – घर में टेलीविजन का आना। टेलीविजन के आने पर अक्सर घर–परिवार की स्थिति में एक बड़ा बदलाव आ जाता है। घर के लोगों में बातचीत कम होने लगती है या बातचीत के मुद्दे बदल जाते हैं। इसी प्रकार, टेलीविजन आने पर बच्चे, बड़े–बूढ़ों से कहानियाँ सुनना कम कर देते हैं। बड़े–बूढ़े बच्चों को जिस प्रकार की कहानियाँ सुनाते हैं, अपने अनुभव बाँटते हैं, टेलीविज़न में वैसा नहीं होता। इन सब का दूरगामी असर होता है। बच्चों के जीवन में बड़े–बूढ़ों की उपयोगिता कम होने लगती है।

जिस गति और दिशा में परिवार शादी से पहले चल रहा था, शादी के बाद उसकी दिशा और गति में परिवर्तन आता है। नये उपकरणों की वजह से बदलाव आता है।

बच्चों का रिश्ता मनुष्य से कम और निर्जीव वस्तुओं से ज्यादा होने लगता है। परिवार के लोगों के बीच संवाद कम होने लगता है। उनकी आकांक्षाएँ बदलने लगती हैं।

[कृषि कार्यों (निराई–गुड़ाई में शिथिलता), कुटीर धंधों (ऊन–कताई, रस्से बटाई), लोक संस्कृति (सामूहिक नृत्य–गान), आदि पर टेलीविज़न के प्रभाव की चर्चा कराई जा सकती है।]

कहने का आशय यह है कि इस प्रकार की अनेक घटनाओं को जांचा जा सकता है जो ऊपर से देखने पर मामूली लगती हैं पर जिनका हमारे जीवन पर दूरगामी परिणाम होता है। बच्चों की उम्र देखते हुए विषय को विस्तार दे सकते हैं, उसकी गहराइयों में जा सकते हैं।

जो बातें परिवार के स्तर पर लागू होती हैं, वही समाज और देश के स्तर पर भी लागू होती हैं – यह समझाया जा सकता है।

उदाहरण : टिहरी बाँध का बनना, बहुत सारे लोगों – जिन्हें अपने पूर्वजों के गाँवों, घरों, खेतों को छोड़कर दूसरी जगह जाना पड़ा – के जीवन में एक बड़ा बदलाव लेकर आया है। इन लोगों के जीवन में यह बदलाव टिहरी बाँध से पैदा होने वाली बिजली से होने वाले बदलाव से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण होगा। इस प्रकार जब एक समय–अन्तराल के बाद टिहरी के विस्थापित अपने जीवन को समझने का प्रयास करेंगे तो टिहरी बाँध का बनना एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में देखा जायेगा।

अनेक घटनाओं को जांचा जा सकता है जो ऊपर से देखने पर मामूली लगती हैं पर जिनका हमारे जीवन पर दूरगामी परिणाम होता है।

इसी उदाहरण को और आगे बढ़ा कर समझ बनायी जा सकती है (अन्य उदाहरण भी हो सकते हैं)। टिहरी बाँध का बनना– एक घटना। उससे होने वाले बदलाव–विस्थापन – एक और घटना जिसके कारण विस्थापितों के जीवन में अनेकों अच्छे–बुरे प्रभाव हुए होंगे।

[पुराना टिहरी शहर, राजा का महल/निवास गृह, घंटाघर, भवन–इमारतें, मंदिर, पुल, खेत, मैदान, आदि सभी जल में निमग्न हो गए; विर्षल जलाशय अस्तित्व में आया; 'नई टिहरी' नामक शहर अस्तित्व में आया, इत्यादि– इन बातों की ओर भी बच्चों का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं।]

टिहरी बाँध के बनने के पीछे कारणों की समझ भी इतिहास से ही मिलेगी। टिहरी बाँध बनाने, इससे जुड़े आन्दोलन में जिन लोगों ने भूमिका निभाई, उसकी समझ भी इतिहास से ही मिलेगी। इस प्रकार की चर्चा कक्षा में हो सकती है।

कुल मिलाकर, ध्यानाकर्षण इस बात पर करवाना अच्छा रहेगा कि इतिहास से हमें:

- अपने आज को समझने में मदद मिलती है (उदाहरण: विस्थापितों के जीवन को समझने के लिये टिहरी बाँध और विस्थापन की घटना)।
- घटना के कारण (टिहरी बाँध के बनने के पीछे उस समय प्रचलित विकास की अवधारणा, बड़े शहरों – दिल्ली वगैरह में बढ़ती बिजली की खपत इत्यादि) का विश्लेषण करने में मदद मिलती है।

टिहरी बाँध का बनना– एक घटना। उससे होने वाले बदलाव – विस्थापन – एक और घटना जिसके कारण विस्थापितों के जीवन में अनेकों अच्छे–बुरे प्रभाव हुए होंगे।

- घटना में विभिन्न लोगों की भूमिका (बनाने में, आन्दोलन में, साधारणजन की भूमिका, इत्यादि) का पता चलता है।
- घटना के प्रभाव (विस्थापितों के जीवन में आये बदलाव, पर्यावरण में आये बदलाव, इत्यादि) का पता चलता है।
- नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के लोगों पर अलग–अलग प्रभाव – जिन लोगों ने उस भूमि पर जन्म लिया, जिनकी स्मृतियां वहां के नदी–नालों, खेत–खलियानों से जुड़ी हैं, अपनी जन्म भूमि का स्मरण करते ही उनकी आंखें पनीली हो जाती हैं। नई पीढ़ी यह कहते सुनी जा सकती है – क्या रखा था उस ऊबड़–खाबड़ इलाके में।

उक्त बातों की समझ इतिहास से मिलती है जिससे हम यह समझ सकते हैं कि हमारा आज का जीवन जैसा दीखता है, उसके पीछे किन घटनाओं की भूमिका रही है।

हम आज जैसा भी जीवन जीते हैं, उसका सम्बन्ध इतिहास से होता ही है।

कानूनों, अधिकारों में बदलाव, उपकरणों में बदलाव, इत्यादि सभी कारण बनते हैं और हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। इनकी समझ इतिहास से मिलती है।

उदाहरणतः आज हमारे लोग जंगलों की वैसी देखभाल नहीं करते जैसी पहले किया करते थे। जंगल भी कम हुए हैं। अगर हम आज की इस स्थिति का विश्लेषण करते हैं तो इतिहास से हमें पता चलता है कि पहले

इतिहास से हम यह समझ सकते हैं कि हमारा आज का जीवन जैसा दीखता है, उसके पीछे किन घटनाओं की भूमिका रही है।

इन जंगलों पर हमारा अधिकार था। कालान्तर में, अंग्रेजों के जमाने में, यह अधिकार हमसे छीन लिया गया। धीरे–धीरे हमारे समाज के लोग जंगलों को किसी अन्य (सरकार) की सम्पत्ति समझने लगे। पहले ये जंगल उन्हें अपने लगते थे और इसलिये वे उसका पोषण, संरक्षण, सदुपयोग खुद ही करते थे। जब उनसे जंगल छीन लिये गये या कहें जंगलों को सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया तो धीरे–धीरे लोगों की मानसिकता में परिवर्तन होने लगा। जंगलों की स्थिति में ह्रास का यही सबसे बड़ा कारण बना।

फिर इसी कारण धीरे–धीरे मकानों की बनावट पर भी इसका प्रभाव पड़ा। पहले लकड़ी उपलब्ध थी और लोग उसका सदुपयोग अपने मकान (पहाड़ों में) बनाने में करते थे। पहाड़ों में लकड़ी के ये मकान परम्परा में बनाये जाते रहे हैं। वे मौसमानुकूल भी हैं और वैसा कौशल भी पहाड़ के लोगों में परम्परा से रहा है। परन्तु जंगलों का अधिकार सरकार के पास आ जाने के बाद सीधे तरीके से लोगों को लकड़ी मिलनी मुश्किल होती चली गयी। धीरे–धीरे कारीगरों की आजीविका पर भी असर पड़ा और मकानों की बनावट पर भी। सन् 1991 में उत्तरकाशी के भूकम्प के दौरान ज्यादा मौतें नये बने सीमेंट के मकानों में हुई न कि पुराने लकड़ी के बने मकानों में। लकड़ी के मकान हर लिहाज से पहाड़ों के लिये उपयुक्त हैं। देखने में भी ज्यादा सुन्दर लगते हैं। उत्तरकाशी के भूकम्प में हुई मौतों का संबंध जंगल के कानून से भी है, इसे समझा जा सकता है। आज पहाड़ों के मकान भी

कानूनों, अधिकारों में बदलाव, उपकरणों में बदलाव, इत्यादि सभी कारण बनते हैं और हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। इनकी समझ इतिहास से मिलती है।

मैदानी इलाके के मकानों जैसे ही बनने लग गये हैं। यह बात जुदा है कि मैदानी क्षेत्रों के मकान भी विदेशी पैटर्न पर बन रहे हैं, जो न यहां की जलवायु के अनुकूल हैं और न ही अपनी ज़रूरतों के मुताबिक। इतिहास को देखने से यह समझ बनती है कि आज मकानों की बनावट में फर्क क्यों आ रहा है। और साथ ही, यह भी समझ में आता है कि क्यों हमारे लोग अपने ही वनों को पराया समझने लगे हैं।

इतिहास को देखने से यह समझ बनती है कि आज मकानों की बनावट में फर्क क्यों आ रहा है। और साथ ही, यह भी समझ में आता है कि क्यों हमारे लोग अपने ही वनों को पराया समझने लगे हैं।

मेरे परिवार का इतिहास

इतिहास की समझ देने के बाद हम अब इतिहास को बच्चे के परिवार से जोड़ने का प्रयास करेंगे।

हर बच्चा अपने परिवार के इतिहास का पता कर सकता है। इसके लिए एक सूची बनायी जा सकती है जिसके आधार पर यह परियोजना आगे बढ़ सकती है। इस क्रम में बच्चों को अपने परिवार के इतिहास की जानकारी प्राप्त होगी।

परिवार का 3–4 पीढ़ियों का वंश–वृक्ष :

वंश–वृक्ष दादा–दादी/नाना–नानी से शुरू होकर, बच्चे की अपनी पीढ़ी तक बनाना उचित होगा। माँ के परिवार की भी जानकारी इस वंश–वृक्ष में दी जानी चाहिए। इसमें, जिन लोगों की मृत्यु हो गई है, उनका जिक्र भी हो। अगर संभव हो तो सभी के जन्म–मृत्यु की तिथि/तारीख भी दी जाय। सभी सदस्यों का नाम तो आयेगा ही।

परिवार कब से इस गाँव/शहर में बसा :

सबसे पहले कौन यहाँ आकर बसा? किस जगह से उठकर परिवार के लोग यहाँ आये? वे कौन से कारण थे, जिनकी वजह से परिवार के लोगों को अपना पहले वाला स्थान छोड़ना पड़ा एवं किस वजह से उन्होंने इस

गाँव/शहर को रहने के लिये चुना? खानदान के अन्य लोग कहाँ–कहाँ बसे हुए हैं? उस खानदान के किसी व्यक्ति ने यदि किसी क्षेत्र (शिल्प, कला, न्याय, संस्कृति, बहादुरी, पांडित्य, कृषि, उद्योग, आदि) में कोई उल्लेखनीय कार्य किया हो, तो उसका जिक्र भी करना चाहिए। विभिन्न स्थानों में बसे लोगों की वेशभूषा, खानपान, भाषा–बोली, रीति–रिवाजों में क्या अंतर आए? इत्यादि।

[परिवार के इतिहास में एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसना एक महत्वपूर्ण घटना मानी जायेगी। इस घटना से परिवार की स्वाभाविक गति और दिशा, दोनों में बदलाव आया होगा। इसकी जाँच बच्चे कर सकते हैं। स्थान बदलने से बहुत–सारे बदलाव आते हैं – खान–पान में, आर्थिक स्थिति में, बोली–भाषा में, पढ़ाई–लिखाई के क्षेत्र में, काम–धंधों के क्षेत्र में, राजनैतिक सोच में, रिश्तों में, इत्यादि। इस कारण कुछ लोगों के आपसी संबंध बदल गये होंगे। कुछ लोगों से नये संबंध बने होंगे। इन सबकी जाँच बच्चे कर सकते हैं। कारण, घटना एवं प्रभाव तीनों का विश्लेषण किया जा सकता है। इस बात पर भी चर्चा हो सकती है कि घटना के कारण बदलाव की दिशा और गति दोनों में बदलाव आता है।]

परिवार का रोजगार :

क्या परिवार के किसी सदस्य ने कोई नया काम (स्वरोजगार या नौकरी) शुरू किया – कब किया, क्यों किया, उससे क्या प्रभाव पड़े?

कारण, घटना एवं प्रभाव तीनों का विश्लेषण किया जा सकता है। इस बात पर भी चर्चा हो सकती है कि घटना के कारण बदलाव की दिशा और गति दोनों में बदलाव आता है।

[बदलाव की सामान्य गति और दिशा में नये काम (घटना) से बड़ा बदलाव आता है। इसकी जाँच हो सकती है। बच्चे उस घटना को भी देखेंगे, जिसकी वजह से बदलाव आया। साथ ही, यह भी जाँचेंगे कि बदलाव के कारण क्या थे और उसके प्रभाव क्या पड़े? आर्थिक स्थिति में बदलाव आ सकता है। साथ ही, यह भी हो सकता है कि नौकरी की वजह से कुछ लोग घर छोड़कर दूसरी जगह रहने लगे (जो कि उसका प्रभाव है।) और फिर यह प्रभाव कारण बना नये बदलावों का।]

मकान :

परिवार का वर्तमान मकान कब बना? किसने बनाया? बनाने के पीछे क्या कारण थे (सदस्यों की बढ़ती संख्या, आर्थिक स्थिति, इत्यादि)? पहले जिस मकान में रहते थे, उसका क्या हुआ? पुराने मकान और नए मकान के नक्शे में क्या अंतर है? यह अंतर क्यों है? पुराना मकान ज्यादा सुविधाजनक था या नया मकान? मकान बनाने में कौन–सी सामग्रियां इस्तेमाल की गई, आज वैसी सामग्री इस्तेमाल क्यों नहीं की जाती – क्या पसन्द में फर्क आया है? क्या निर्माण–सामग्री की उपलब्धता में फर्क आया है? या कारीगरों की वजह से?– इन सब बातों की छानबीन बच्चे कर सकते हैं।

[नया घर बनना परिवार के रहन–सहन में एक बड़ा बदलाव लाता है। उस समय कई ऐसे कारण बनते हैं, जिससे मकान का बनना संभव हो पाता है। जैसे– घर की आर्थिक

बदलाव की सामान्य गति और दिशा में नये काम (घटना) से बड़ा बदलाव आता है। उस घटना को भी देखेंगे, जिसकी वजह से बदलाव आया। साथ ही, यह भी जाँचेंगे कि बदलाव के कारण क्या थे और उसके प्रभाव क्या पड़े?

स्थिति अच्छी होना, मकान बनाने की सामग्री की उपलब्धता या किसी सदस्य की पहल। फिर मकान बनाने की जरूरत भी महसूस हुई होगी – इसका भी पता किया जा सकता है।]

मकान अगर पुराना है तो उसमें लगी सामग्री की गुणवत्ता जरूर आज से बेहतर होगी (जैसे लकड़ी)। इस बात की छान–बीन की जा सकती है। बच्चों का इन बातों पर ध्यानाकर्षण करवाया जा सकता है कि कई बार नई होने से ही चीजें अच्छी नहीं हो जाती। मकानों की बनावट, सामग्री, इत्यादि में होने वाले बदलावों की एंव उनके कारणों की समीक्षा की जा सकती है। बदलावों का मूल्यांकन भी किया जा सकता है, जैसे पहाड़ों के लिये लकड़ी बेहतर है या सीमेंट? सपाट छत अच्छी है या ढालुआँ छत? टिन की छत अच्छी है या पत्थर की? इन दोनों छतों (टिन और पत्थर) का आपस में तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है। पहाड़ी इलाकों में किस प्रकार की और मैदानी इलाकों में किस प्रकार की छत उपयोगी होगी, इसकी भी जांच–परख की जा सकती है।

बच्चों का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे की ओर भी आकर्षित कराया जा सकता है कि पहाड़ों पर पुराने मकानों के निर्माण में समुदाय की बहुत बड़ी भूमिका रहती थी। वर्तमान स्थिति के बारे में भी चर्चा कराई जा सकती है।

समय के साथ लोगों की पसन्द भी बदल जाती है। इसके कारणों, अन्य प्रभावों, जिनकी वजह से यह बदलाव आता है, की भी

समय के साथ लोगों की पसन्द भी बदल जाती है। इसके कारणों, अन्य प्रभावों, जिनकी वजह से यह बदलाव आता है, की भी जाँच की जा सकती है। जैसे आजकल विज्ञापन देखकर, पत्रिकायें देखकर, फिल्में देखकर, हमारी पसन्द प्रभावित होने लगी है।

जाँच की जा सकती है। जैसे आजकल विज्ञापन देखकर, पत्रिकायें देखकर, फिल्में देखकर, हमारी पसन्द प्रभावित होने लगी है। इस पर चर्चा हो सकती है।

परिवार में आए बदलाव :

परिवार में पिछले 50–60 वर्षों में किन लोगों का जन्म या मृत्यु हुई? कौन–से सदस्य शादी करके घर में आये और कौन–कौन शादी करके घर से बाहर चले गये? इनकी वजह से घर के काम–काज,रहन–सहन में आये बदलाव।

शादी करके जब कोई सदस्य घर में आता है तो वह कहाँ से आया, इसका पता किया जा सकता है। वह सदस्य जिस परिवार, गाँव/शहर से आता है, वहाँ की बोली–भाषा, पहनावे, रहन–सहन, आदतों का प्रभाव भी अपने साथ लाता ही है – इसका कालान्तर में परिवार पर सूक्ष्म रूप से असर पड़ता है, जिसके कारण परिवार का रहन– सहन, बोली–भाषा, थोड़ी–बहुत बदल जाती है – इसकी छानबीन की जा सकती है। इसी तरह, जब कोई सदस्य शादी की वजह से या रोजगार की तलाश में घर छोड़कर, नया घर अलग जगह बसा लेता है तो परिवार में यह घटना एक बड़ा बदलाव लाती है। इस बदलाव के असर (प्रभावों) को जांचा जा सकता है। काम–काज तथा अन्य रिश्तों में बदलाव आये होंगे। लड़कियाँ बहुत सारा काम संभाले रहती हैं और उनका परिवार के कई सदस्यों के साथ एक खास रिश्ता होता है (माँ–बाप, भाई–बहन, भाभियों के साथ)। शादी के बाद

जब वह घर से चली जाती है तो जो काम वह संभाले हुए थी, उसे किसी और को करना पड़ता है। जिनके साथ उसके अच्छे रिश्ते थे, उन्हें एक खालीपन महसूस होने लगता है – ये सब कारण बनते हैं – बड़े बदलाव के।

यहाँ परिवार में विभिन्न संबंधों को समझा जा सकता है। जैसे – माँ और बेटे/बेटी का संबंध क्या होता है; ममता का क्या मतलब होता है; पिता का क्या संबंध होता है। वात्सल्य का क्या अर्थ होता है। भाई–बहन, भाई–भाई, बहन–बहन के बीच स्नेह के संबंध का क्या अर्थ होता है। इसी प्रकार, परिवार के सदस्यों के बीच सम्मान और विश्वास का क्या अर्थ है, इसे समझा जा सकता है। सम्मान और विश्वास का प्रवाह दो सदस्यों के बीच होने से सुख का अनुभव होता है, इसकी समझ बनाई जा सकती है।

परिवार के स्वरूप में आये बदलाव का अध्ययन :

बहुत–सारे परिवार जो कभी संयुक्त थे, अब एकांगी हो गये हैं। इन बदलावों के कारणों एवं प्रभावों की जांच की जा सकती है।

संयुक्त परिवार एवं एकांगी परिवार में परिवार का संगठन, प्रबंधन, कार्य–योजना का निर्माण, क्रियान्वयन, कार्य–विभाजन, महिलाओं एवं बच्चों की भागीदारी – इन मुद्दों पर भी चर्चा चलाई जा सकती है।

परिवारों के एकांगी होने के पीछे अनेक कारण होते हैं। स्थूल कारण कुछ और होते हैं

सम्मान और विश्वास का प्रवाह दो सदस्यों के बीच होने से सुख का अनुभव होता है, इसकी समझ बनाई जा सकती है।

और सूक्ष्म कारण कुछ और होते हैं। आपसी मन–मुटाव, झगड़े, पैसा, खर्च, नौकरी, इत्यादि अनेक स्थूल कारण हो सकते हैं परन्तु सूक्ष्म स्तर पर पारम्परिक काम से हटकर नौकरी करना, एक या दो सदस्यों का घर से बाहर रहना, बाजार पर बढ़ती निर्भरता और बाजार से बढ़ती लालसा, व्यक्तिगत आकांक्षाएं ही परिवार में फूट का कारण बनती हैं। परिवारों में एक–दूसरे के प्रति त्याग और समर्पण की भावना में क्षरण क्यों हुआ है, इसकी भी चर्चा कराई जा सकती है।

परिवारों के एकांगी होने के पीछे अनेक कारण होते हैं। स्थूल कारण कुछ और होते है और सूक्ष्म कारण कुछ और होते हैं।

मेरे गाँव का इतिहास

भारत का सामाजिक ढाँचा :

भारतवर्ष बहुत पुरातन काल से एक अखंड–अविभाज्य क्षेत्र रहा है। साथ ही, इसका समाजिक ढाँचा कुछ इस प्रकार का रहा है कि राजनैतिक इकाइयों व स्थानीय इकाइयों के रूप में छोटे–छोटे सुसम्बद्ध इलाकों की अपनी अलग–अलग स्वायत्त पहचान भी रही है।

भारत में चक्रवर्ती सम्राट की अवधारणा भी रही है। इस अवधारणा में चक्रवर्ती राजा इस पृथ्वी का सर्वोच्च शासक माना जाता था। राम, अशोक और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ऐसे ही सम्राट माने जाते हैं। चक्रवर्ती का पद मुख्यतः प्रतिष्ठा का ही पद था। चक्रवर्ती राजा को अपने से ऊँचा मानकर दूसरे राजा उसका सम्मान करते थे। यह सम्मान लगभग उसी तरह का था जैसा कि लोग संन्यासी, ऋषि, विद्वान या कवि को दिया करते हैं। चक्रवर्ती में अनेक सद्‌गुण और कई तरह के कौशल हुआ करते थे। लेकिन यह साफ है कि वह न तो पूरे भारतवर्ष का प्रशासक हुआ करता था, न ही उसे पूरे भारतवर्ष से कर (टैक्स) इकट्‌ठा करने वाले किसी बड़े कलेक्टर के रूप में देखा जा सकता है और न ही भारत की सैनिक शक्ति के किसी सर्वोच्च सेनापति के रूप में। यह सब काम तो मूल राजनैतिक

भारतवर्ष बहुत पुरातन काल से एक अखंड–अविभाज्य क्षेत्र रहा है। साथ ही, इसका समाजिक ढाँचा कुछ इस प्रकार का रहा है कि राजनैतिक इकाइयों व स्थानीय इकाइयों के रूप में छोटे–छोटे सुसम्बद्ध इलाकों की अपनी अलग–अलग स्वायत्त पहचान भी रही है। चक्रवर्ती का पद मुख्यतः प्रतिष्ठा का ही पद था।

इकाइयों का प्रशासन चलाने वाले लोग (स्थानीय राजा वगैरह) ही किया करते थे।

हालाँकि राजनैतिक इकाइयों की अपनी स्वायत्त पहचान थी पर इसके बावजूद राजनैतिक इकाइयों में भी किसी प्रकार की कोई केन्द्रीकृत व्यवस्था नहीं थी। भारतीय इतिहास के ज्यादातर दौरों में, इन राजनैतिक इकाइयों की संख्या सैकड़ों नहीं तो दर्जनों में तो गिनी ही जा सकती है। ये राजनैतिक इकाइयाँ गाँव, मुहल्ले, कस्बे, वगैरह पर आधारित स्थानीय इकाइयों में बँटी होती थीं। एक राजनैतिक इकाई में शायद हजारों ऐसी स्थानीय इकाइयाँ होती थीं। इन स्थानीय इकाइयों और उन्हें जोड़ने वाली राजनैतिक इकाई में कुछ ऐसा ही संबंध रहता था जैसा कि इन राजनैतिक इकाइयों और चक्रवर्ती राजा के बीच होता था।

प्रभुसत्ता के साथ जुड़े जो अधिकार और कार्य होते हैं, उनमें से ज्यादातर स्थानीय स्तर पर ही हुआ करते थे। सिर्फ बचे हुए साधन, अधिकार और कार्य ही बड़ी राजनैतिक इकाई के हाथ में होते थे। कुछ क्षेत्रों में राजनैतिक इकाई की शक्ति और अधिकार काफी व्यापक रहे हैं लेकिन यह अधिकार मुख्यतः प्रशासनिक ही था। क्या प्रशासित किया जाना है, इसका फैसला तो पहले ही स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों के स्तर पर हो चुका होता था। प्रशासन की नीति या तो धर्म से परिभाषित होती थी या सामाजिक रीति–रिवाजों से। इन रीति–रिवाजों में परिवर्तन तो सिर्फ कालान्तर में ही हो सकता था। जाति या किसी पेशे से संबंधित

स्थानीय इकाइयों और उन्हें जोड़ने वाली राजनैतिक इकाई में कुछ ऐसा ही संबंध रहता था जैसा कि इन राजनैतिक इकाइयों और चक्रवर्ती राजा के बीच होता था।

मामलों के बारे में नीति का फैसला, सम्बन्धित जाति या पेशेवर समूह की सहमति से ही होता था। या फिर बड़े मामलों में किसी महान ऋषि या विद्वान वगैरह के माध्यम से सभ्यता के स्तर पर बड़ा फैसला हुआ करता था। राजनैतिक इकाई को चलाने वाले लोग तो इन फैसलों को सिर्फ लागू ही किया करते थे, इन फैसलों को करने का, नीति या धर्म को निर्धारित करने का अधिकार तो उन्हें नहीं था।

राजनैतिक इकाइयाँ जिन स्थानीय इकाइयों में बंटी थीं, उनमें लोगों ने मुख्यतः तीन तरह की इकाइयों में अपने आपको व्यवस्थित कर रखा था। इनमें एक तो गाँव, मुहल्ले, कस्बे या तीर्थ–स्थान जैसी स्थानीय इकाइयाँ थीं; दूसरी, जाति व्यवस्था की इकाइयाँ और तीसरी, अलग–अलग दस्तकारियों और धंधों के अनुसार बने पेशेवर समूहों की इकाइयाँ थीं। लेकिन ये सभी इकाइयाँ एक–दूसरे से बिल्कुल अलग, अपने समूह में अलग–थलग नहीं रहा करती थीं। हर व्यक्ति किसी गाँव–मुहल्ले में रहता था, वह किसी जाति या कुनबे का सदस्य भी होता था और किसी–न–किसी पेशेवर समूह के साथ भी जुड़ा ही रहता था। व्यक्ति की तरह ही उसकी स्थानीय, जातिगत और पेशेवर इकाइयाँ भी अपनी तरह की दूसरी इकाइयों के साथ जुड़ी रहती थीं। जिन–जिन परिस्थितियों में किसी एक तरह के समूह को दूसरे समूहों के साथ तालमेल बनाने की जरूरत पड़ती थी, उन परिस्थितियों में ऐसा तालमेल भी होता रहता था।

बच्चों को मोटी–मोटी समझ देने के पश्चात हम उसके गाँव की बात पर आ सकते हैं। गाँव का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से अध्ययन करने हेतु, कई प्रकार की गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं। जिसे हम गाँव कहते हैं, इस इकाई को समझने के लिये उसे विभिन्न आयामों से अध्ययन करना पड़ेगा। बच्चे अपने गाँव को समझें, उसकी समृधि और ताकत को पहचानें – ऐसा हमारा प्रयास होगा। अगर कहीं कमी दिखाई देती हो तो उसे भी पहचानें, उसके निवारण का भी सोचें परन्तु उस कमी को 'पिछड़ेपन' से न जोड़ें – ऐसी कोशिश होनी चाहिए।

गाँव का नाम :

गाँव कब बसा? किसने बसाया? गाँव का नाम कैसे पड़ा? – इसके पीछे कई प्रकार की कहानियाँ, गीत, इत्यादि हो सकते हैं। कोई एक ही कहानी हो, यह जरूरी नहीं। हमें इस बारे में सभी कहानियों, गीतों, इत्यादि को एकत्रित करवाना चाहिये। गाँव के बुजुर्गों, बड़े–बूढ़ों, महिलाओं को इस विषय में ज्यादा मालूम होगा – उनसे बातें करनी चाहिये।

गाँव का नक्शा :

बच्चे गाँव का भी नक्शा बना सकते हैं जिसमें सीमा के परे महत्त्वपूर्ण स्थान एवं सीमा के अंतर्गत महत्त्वपूर्ण स्थानों (बस्ती, स्कूल, मंदिर, मस्जिद, खेत, नदी–नाले, तालाब पहाड़, इत्यादि) को दर्शाया जा सकता है। जहां मेले लगते हों, औद्योगिक महत्त्व रखने वाले स्थान, जहां स्थानीय कारीगरी की चीजें बनती हों,

अन्य गाँव–शहर– ये सब गांव से किस दिशा में हैं, कितनी दूर है, गांव से किस सड़क द्वारा जुड़े हैं, यातायात के कौन–कौन से साधन हैं – इन सबका अध्ययन हो सकता है।

इस प्रक्रिया के दौरान, हम बच्चों को खेत–खलिहान जैसे स्थानों का क्षेत्रफल निकालना भी सिखा सकते हैं। खेत–खलिहान अक्सर सीधी रेखाओं से घिरे नहीं होते, इसलिए इनका क्षेत्रफल निकालना मुश्किल माना जाता है; परंतु इन स्थानों को हम छोटी–छोटी आयताकार/वर्गाकार/त्रिभुजाकार इकाइयों में बाँट सकते हैं और फिर इन छोटी इकाइयों का क्षेत्रफल निकालकर उन्हें जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार, संपूर्ण खेत का क्षेत्रफल निकाला जा सकता है।

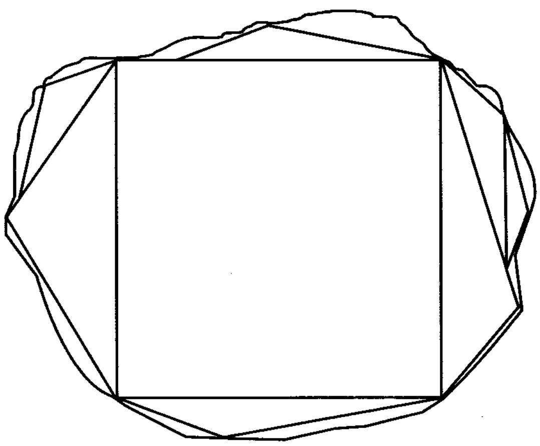

यहां पर बच्चों से अनुपात के बारे में अच्छी चर्चा हो सकती है और यह जरूरी भी है क्योंकि कोई भी नक्शा अनुपात की समझ के बिना नही बन सकता। पहले स्कूल का नक्शा बनाया जाये उसके बाद गांव/शहर का नक्शा बनाया जाये।

गाँव में किस जाति, धंधे के लोग शुरू में बसे?

पहले लोग क्या करते थे और आज क्या करते हैं? पहले और आज के काम में आया बदलाव, इत्यादि। इन बातों की जानकारी लेने के बाद, बदलाव के कारणों की समीक्षा की जा सकती है। रोजगार में क्या–क्या बदलाव आये? ये बदलाव अलग–अलग जातियों में अलग–अलग प्रकार के भी हो सकते हैं। फिर इन बदलावों के असर की भी समीक्षा हो सकती है। जैसे – पहले गेहूँ का दाना निकालने का काम, हो सकता है, महिलायें करती थीं या बैलों के द्वारा होता था। फिर यह काम मशीन से होने लगा। और जब से मशीने आयीं, हो सकता है कि यह काम पुरुष करने लगे हों। तो मशीन का आना एक घटना है, जिसका प्रभाव महिला के काम और पुरुष के काम दोनों पर पड़ा।

गाँव में अलग–अलग जातिगत समूह क्या–क्या धंधे किया करते थे? उन धंधों में क्या बदलाव आया है? आज इन जातियों के लोग क्या करते हैं? इन बदलावों के कारण गाँव के जीवन में, जातियों के जीवन में क्या बदलाव आये हैं? इन बदलावों की वजह से समाज के ताने–बाने पर क्या प्रभाव पड़ा? इन सब का गहराई से अध्ययन हो सकता है। पहले कई प्रकार के धंधे – जैसे लोहारी, बढ़ईगीरी, धोबी, नाई, इत्यादि जातिगत समूहों का गाँव में होने वाली खेती में एक निश्चित हिस्सा होता था। इस परम्परा और व्यवस्था का गहराई से अध्ययन हो सकता है।

रोजगार में क्या–क्या बदलाव आये? फिर इन बदलावों के असर की भी समीक्षा हो सकती है। बदलावों के कारण गाँव के जीवन में, जातियों के जीवन में क्या बदलाव आये हैं? इन बदलावों की वजह से समाज के ताने–बाने पर क्या प्रभाव पड़ा?

गाँव की आबादी :

आज कितनी है – कुल स्त्री, पुरुष; इनमें से बच्चे, बूढ़े कितने हैं? अलग–अलग उम्र और लिंग के मुताबिक वर्गीकरण किया जा सकता है। पहले और आज में तुलना की जा सकती है।

स्त्री/पुरुष की संख्या में फर्क होने पर उसके कारणों (भ्रूणहत्या से लेकर पलायन तक) की जांच की जा सकती है। अलग–अलग उम्र समूहों में स्त्री–पुरुष (लड़के–लड़कियों) की संख्या में फर्क पर और गहराई से चर्चा हो सकती है। पहाड़ के गाँवों में अक्सर 15–50 वर्ष की उम्र समूह के बीच देखा जाता है कि गाँव में पुरुष बहुत कम हैं। ऐसा कब से होने लगा; इसके क्या कारण हैं और ऐसा होने के क्या प्रभाव पड़ते हैं (जैसे महिलाओं पर बढ़ता काम का दबाव), इसकी समीक्षा हो सकती है।

गाँव की आबादी बढ़ रही है या घट रही है? बढ़ रही है तो राज्य और देश की तुलना में कितनी बढ़ रही है? घट रही है तो क्या कारण हैं (पलायन?)। इन मुद्दों पर चर्चा हो सकती है।

स्कूल–कॉलेज जाने वाले बच्चों का विवरण; सरकारी, गैर–सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बालक–बालिकाओं का विवरण। अंग्रेजी माध्यम एवं अन्य भाषा के माध्यम से पढ़ने वालों की संख्या।

क्या जनसंख्या गाँव के लिये कोई बड़ी समस्या है? इस पर चर्चा हो सकती है। (देश

के लिए जनसंख्या भले ही समस्या हो, पर क्या गाँव के लिए भी यह समस्या है?)

गांव में किस तरह के लोगों को सम्मान मिला है – ऐसे लोग जिनके पास सुविधाएं हैं या ऐसे लोग जिनके पास पारंपरिक–ज्ञान, सूझ–बूझ है?– इस पर भी चर्चा हो सकती है।

बड़े–बूढ़ों की स्मृति में गाँव में कभी कोई बड़ी घटना, दुघर्टना घटी है?

कोई बड़ा आन्दोलन, कोई बड़ी प्राकृतिक आपदा (भूकंप, भूस्खलन, सूखा, बाढ़, इत्यादि) इनका असर जनजीवन पर पड़ा होगा। इनका पता किया जा सकता है। इसमें किसी व्यक्ति ने कोई बड़ी भूमिका भी निभाई हो, ऐसा भी संभव है। इस पर गीत, कहानी, इत्यादि भी मिल सकते हैं। इन घटनाओं का गाँव के जनजीवन पर क्या असर पड़ा, इन बातों का पता किया जा सकता है।

[पहले और अब की जलवायु (वर्षा, गर्मी, ठंड, बर्फबारी) में अगर कोई अंतर आया है, तो इस पर भी चर्चा की जा सकती है।]

गाँव की संस्कृति :

लोगों के पहनावे, खान–पान, रहन–सहन, बोली–भाषा, आपसी व्यवहार, संबंधों, मकानों की बनावट, शादी–विवाह की रस्मों, न्याय या फैसले करने के तरीकों, धार्मिक रीति–रिवाजों, अनुष्ठानों, नाच–गानों, त्योहारों, फसल बोने–काटने के तौर–तरीकों में समय के साथ–साथ होने वाले बदलावों की समीक्षा की जा सकती है। इन सब में समय के साथ होने

पहले और अब की जलवायु (वर्षा, गर्मी, ठंड, बर्फबारी) में अगर कोई अंतर आया है, तो इस पर भी चर्चा की जा सकती है। लोगों के पहनावे, खान–पान, रहन–सहन, बोली–भाषा, आपसी व्यवहार, मकानों की बनावट, शादी–विवाह की रस्मों, न्याय या फैसले करने के तरीकों, फसल बोने–काटने के तौर–तरीकों में समय के साथ–साथ होने वाले बदलावों की समीक्षा की जा सकती है।

वाले बदलावों के पीछे के कारणों को जानने का प्रयास भी हो सकता है। कुछ बातों का बाहरी आवरण तो बदल जाता है लेकिन मूल स्वर वही रहता है।

समय के साथ उपरोक्त बातों में बदलाव होते ही रहते हैं। बच्चों का यह पता लगना महत्वपूर्ण हैं कि ये सभी चीजें कालान्तर में बदलती रहती हैं। गाँव के लोग पहले जैसा खाते–पीते थे, पहनते थे – सभी कुछ में समय के साथ बदलाव आया है; वे इस बात को समझें। साथ ही, उन कारणों को भी समझने का प्रयास करें जिनकी वजह से ऐसा हुआ होगा।

स्थानीय बोली–भाषा :

स्थानीय बोली–भाषा का एक छोटा (हजार से पांच हजार शब्द) शब्दकोश बनाने का प्रोजेक्ट भी लिया जा सकता है। शिक्षक बच्चों को अलग–अलग विषय–वस्तु (बर्तन, पौधे, पेड़, अन्य वनस्पतियां, खेती–बाड़ी से संबंधित शब्द, खान–पान से संबंधित शब्द, रिश्तों के नाम, अलग–अलग क्रियाओं के नाम, मौसम संबंधी शब्द, रंगों, आकारों, विशेषणों, औषधियों से संबंधित शब्द, इत्यादि) के बीस–बीस शब्द स्थानीय बोली–भाषा में इकट्ठा करने के लिए दे सकते हैं। फिर इन स्थानीय शब्दों के हिंदी/अंग्रेजी समानार्थी शब्द ढूँढ़े जा सकते हैं। इसी तरह का काम स्थानीय मुहावरों के साथ भी हो सकता है। इससे यह भी निकलकर आएगा कि बहुत–सारे स्थानीय बोली–भाषा के शब्दों में से ऐसे शब्द भी हैं जिनका हिंदी या अंग्रेजी में सीधा अनुवाद नहीं है। जैसे

बहुत–सारे स्थानीय बोली–भाषा के शब्दों में से ऐसे शब्द भी हैं जिनका हिंदी या अंग्रेजी में सीधा अनुवाद नहीं है। इस प्रकिया में बच्चे स्थानीयता का महत्व समझाने के साथ–साथ हिन्दी/अंगेजी भाषा का ज्ञान भी हासिल करेंगे।

हमारे यहां टिहरी जिले के जौनपुर क्षेत्र में, दो शब्द हमें ऐसे मिले जिनका न हिंदी में और न अंग्रेजी में कोई पर्यायवाची मिलता है। 'अणकटेर'; जिस पेड़ को कुछ वर्षों के लिए काटा नहीं जाता है। 'परालना'; जैसे– बच्चों को हम पालते हैं, उसी प्रकार यहां की स्थानीय भाषा में 'परालना' शब्द का इस्तेमाल पौधे को पालने के लिए किया जाता है।

यह काम एक–दो साल में कक्षा 5 से लेकर कक्षा 8 तक के बच्चे किसी समर्थ शिक्षक की मदद से आसानी से कर सकते हैं। खासकर, आदिवासी क्षेत्रों में यह काम बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। हमें इसके द्वारा स्थानीय संस्कृति की कई समृद्ध परंपराओं एवं स्थानीय ज्ञान का पता चलेगा।

इस प्रकिया में बच्चे स्थानीयता का महत्व समझने के साथ–साथ हिन्दी/अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी हासिल करेंगे।

स्थानी गीत, लोक–कथाएं :

स्थानीय गीत, लोक–कथाएं, मुहावरे, मिथक (अलग–अलग जातियों की अपनी– अपनी कथाएं और कहीं–कहीं जाति पुराण भी मिलते हैं), इत्यादि भी इकट्ठे करवाने चाहिए।

किसी–किसी इलाके में हमें निश्चित रूप से बहुत समृद्ध सामग्री मिलेगी। इनका संकलन निकालने के बारे में भी सोचा जा सकता है। बच्चे इसमे अहम् भूमिका निभा सकते हैं। बड़े–बुजुर्गों से कथाएं, गीत, इत्यादि सुनकर बच्चे उन्हें लिपिबद्ध करें और हो सके तो इसका संपादन भी कर सकते हैं।

बड़े–बुजुर्गों से कथाएं, गीत, इत्यादि सुनकर बच्चे उन्हें लिपिबद्ध करें और हो सके तो इसका संपादन भी कर सकते हैं।

कुछ मान्यताएं :

इसी प्रकार, विभिन्न दैनंदिन कार्यवाहियों से जुड़ी मान्यताओं का भी पता लगाया जा सकता है, जैसे खेती और फसलों से जुड़ी मान्यताएं, मौसम से जुड़ी मान्यताएं, पशु–पक्षियों से जुड़ी मान्यताएं, मिट्टी–पानी–हवा–आंधी–तूफान–सर्दी–गर्मी–बारिश – और इन सबका आपसी संबंध– इसके बारे में हर इलाके में बहुत ही समृद्ध मान्यताएं हैं, जिन्हें हमने आधुनिकता के चक्कर में, 'अंधविश्वास' की टोकरी में रद्दी समझकर, डाल दिया है। परंतु इन मान्यताओं में बहुत–सारा ज्ञान ऐसा है जो सदियों के अनुभव से जनित, पीढ़ी–दर–पीढ़ी हमारे पास आया है। इस पर ध्यान देने की जरूरत है और स्कूल इसमें एक अहम् भूमिका निभा सकते हैं। इस ज्ञान की सच्चाई को भी जांचा जा सकता है, पर उसके तरीके किसी प्रयोगशाला में न होकर, जिन्दगी में होंगे। इनकी भी भविष्य में अलग–अलग पुस्तकें बन सकती हैं।

वास्तु कला :

स्थानीय वास्तु कला के बारे में बच्चों एंव शिक्षकों द्वारा विस्तृत जानकारी ली जा सकती है। भारतवर्ष के बहुत–सारे इलाकों में वास्तु कला में अलग–अलग ज्ञान–परंपराएं समाहित हैं; जैसे– किस दिशा में दरवाजा–खिड़की रखना है और क्यों रखना है, किस लकड़ी या मिट्टी का प्रयोग करना है, कुएं–बावड़ी को किस दिशा में रखना है, इत्यादि। रुचि अनुसार इनकी गहराइयों में जाया जा सकता है और किसी पुराने कारीगर से जानकारियां ली जा सकती हैं।

विभिन्न दैनंदिन कार्यवाहियों से जुड़ी मान्यताओं का भी पता लगाया जा सकता है, इन मान्यताओं में बहुत–सारा ज्ञान ऐसा है जो सदियों के अनुभव से जनित, पीढ़ी–दर–पीढ़ी हमारे पास आया है।

गाँव की प्राकृतिक सम्पदा – (जल, जंगल, जमीन, वन्यप्राणी) :

गाँव में जल के स्रोत पहले कहाँ थे, कैसे थे और अब कहाँ हैं, कैसे हैं? इनमें कब बदलाव आया? किन कारणों से यह बदलाव आया? इन बदलावों के क्या प्रभाव पड़े? जैसे गाँव में नल से पानी आने के बाद पारम्परिक स्रोतों पर क्या असर हुआ? पहले लोग प्राकृतिक स्रोतों की देखभाल करते होंगे, अब निर्भरता सरकार पर बढ़ गई होगी। पहले पानी को प्रकृति की देन माना जाता होगा। अब कहीं–कहीं वह एक ऐसी वस्तु बन गई है जिसे पैसे से खरीदा जा सकता है। इन मुद्दों पर और इनके कारणों एवं प्रभावों पर चर्चा हो सकती है।

जल–स्रोतों, नदी–नालों, झरनों, ताल–तलैयों में पर्यटन–स्थलों का 'विकास' और उससे उत्पन्न प्रदूषण पर भी चर्चा करवायी जा सकती है। इस बात पर भी ध्यानाकर्षण करवाया जा सकता है कि पहले बरसाती पानी का संचयन करके उसका विभिन्न कामों में उपयोग किया जाता था। किन–किन कामों में उपयोग किया जाता था, इस पर चर्चा कराई जा सकती है।

गाँव के प्राकृतिक स्रोतों में रिसाव बढ़ा है या घटा है, इसे भी देखा–समझा जा सकता है। उसके कारणों को भी समझना चाहिये। परम्परा में बहुत सा ऐसा काम होता था, मान्यताएँ थीं, या काम–धन्धे इस प्रकार के थे, जिनकी वजह से पानी के स्रोतों की अपने आप भली प्रकार से देखभाल होती थी। इन्हें

पहले लोग प्राकृतिक स्रोतों की देखभाल करते होंगे, अब निर्भरता सरकार पर बढ़ गई होगी। पहले पानी को प्रकृति की देन माना जाता होगा। अब कहीं–कहीं वह एक ऐसी वस्तु बन गई है जिसे पैसे से खरीदा जा सकता है। इन मुद्दों पर और इनके कारणों एवं प्रभावों पर चर्चा हो सकती है।

समझना अच्छा रहेगा; एक क्रिया का दूसरी क्रिया से संबंध समझ में आयेगा।

उदाहरण के तौर पर, गाँवों में घराट (पनचक्की) की परम्परा की वजह से नौलों (पानी के पारम्परिक स्रोत) की देखभाल स्वतः होती रहती थी। अब कई जगह देखा जाता है कि बाजार के बढ़ते प्रभाव की वजह से धीरे–धीरे घराट बंद हो रहे हैं। इस बदलाव की वजह से लोगों ने पारम्परिक नौलों, गधेरों पर ध्यान देना कम कर दिया है और कालान्तर में कहीं–कहीं नौले भी बंद हो गये।

अन्य परम्परायें जैसे भीमल के पेड़ की टहनियों को गधेरों के पास मिट्टी के नीचे या गधेरों का पानी रोककर दबा देने की परम्परा, जो धीरे–धीरे समाप्त हो रही है और जिसका असर पानी के रिसाव पर भी पड़ा है– इन बातों की जाँच–परख भी की जा सकती है। इसी प्रकार अन्य परम्परायें, अन्य कारण भी हो सकते हैं, जिनका असर पानी पर, हमारे जीवन पर पड़ा होगा। कभी–कभी प्रभावों का असर हमारे जीवन पर सीधा न होकर जरा घुमावदार होता है। इतिहास को ढंग से समझने से हमें इनका पता चलता है।

[महाभारत में शांति पर्व में कहा गया है कि राजा का धर्म है कि शेर को बचाये। यह बात व्याख्या करने से समझ में आती है कि शेर को बचाना है तो जंगल को बचाना ही होगा। जंगल होगा तो बारिश होगी। बारिश होगी तो अच्छी खेती होगी, जंगलों में घास इत्यादि होगी, जो कई ऐसे प्राणियों की जरूरत है जो फिर शेर का भोजन होते हैं। खेती

परम्परा में बहुत सा ऐसा काम होता था, मान्यताएँ थीं, या काम–धन्धे इस प्रकार के थे, जिनकी वजह से पानी के स्रोतों की अपने आप भली प्रकार से देखभाल होती थी।

अच्छी होगी तो प्रजा खुशहाल होगी। अन्य कई संबंध भी इस सूत्र में देखे जा सकते हैं। इससे यह पता चलता है कि कैसे मनुष्य एवं सभी जीव–जन्तु, पक्षी, नदी, पहाड़ एवं अन्य इकाइयों का परस्पर संबंध होता है।]

घराट और पानी के पारस्परिक संबंधों को भी देखा जा सकता है। सिर्फ घराट ही पानी पर निर्भर नहीं है बल्कि पानी भी कुछ हद तक घराट पर निर्भर है। सिर्फ भीमल को ही पानी नहीं चाहिये। भीमल से जुड़ी प्रथाओं के कारण भी पानी का संरक्षण होता है।

पानी संरक्षण :

इलाके में, पानी–संरक्षण के तरीके, स्थानीय नदी–नालों–झीलों–तालाबों का अध्ययन भी करवाया जा सकता है। यहां इनका इतिहास भी देखा जाए कि पहले के मुकाबले आज पानी की उपलब्धता कहां–कहां घटी–बढ़ी है; जैसे – हो सकता है कि जिन घरों में पहले पानी नहीं आता था वहां पाइप से अब पानी आने लगा हो। साथ ही, यह भी हो सकता है कि स्थानीय नदी–नालों में पानी घटा हो या स्थानीय तालाब पहले से कम हुए हों। दोनों बातों का और उनसे जुड़े प्रभावों (तात्कालिक एवं दीर्घकालिक प्रभाव) का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।

स्थानीय पेड़–पौधों का उपयोग :

शिक्षक और बच्चे मिलकर अपने इलाके के पेड़–पौधों का और उनका स्थानीय लोग क्या–क्या उपयोग करते हैं (जैसे– ईंधन में, चारे में, औषधि में, अन्य जरूरत की चीजों

घराट और पानी के पारस्परिक संबंधों को भी देखा जा सकता है। सिर्फ घराट ही पानी पर निर्भर नहीं है बल्कि पानी भी कुछ हद तक घराट पर निर्भर है। सिर्फ भीमल को ही पानी नहीं चाहिये। भीमल से जुड़ी प्रथाओं के कारण भी पानी का संरक्षण होता है।

में)– इसका पता लगाया जा सकता है। साथ ही,पेड़–पौधों का एवं मिट्टी–हवा–पानी –पशु–पक्षियों का क्या संबंध है, इनका भी अध्ययन हो सकता है। इस अध्ययन में सबसे सशक्त संदर्भ व्यक्ति स्थानीय बड़े–बुजुर्ग होंगे। बच्चे व शिक्षक खुद अवलोकन करके भी अध्ययन कर सकेंगे।

जंगल और पेड़–पौधे :

इसी प्रकार हम इसका अध्ययन कर सकते हैं कि जंगल में कालान्तर में किस प्रकार के बदलाव आये हैं? जैसे : जंगल पहले से बढ़ा है या घटा है? उसकी विविधता बढ़ी है, घटी है? पहले कुछ ऐसे पेड़–पौधे, झाड़ियाँ, वगैरह होती थीं जो आज लुप्त या बहुत कम हो गयी हैं? क्या बिलकुल नए पेड़–पौधे एवं झाड़ियां उग आई हैं; जैसे– लैटेना घास, गाजर घास, इत्यादि। इनके कारण एवं इनके प्रभाव?

लोगों की निर्भरता जंगल पर कम हुई है या नहीं? हमें इनमें आये बदलावों के कारणों एवं प्रभावों की जांच भी करनी चाहिये। जंगल से गाँव का रिश्ता पहले कैसा था, अब कैसा है? जंगल जब से सरकार के हो गये, गाँव के लोग उसे किस नजर से देखने लगे? इन सब बातों की समीक्षा की जा सकती है।

जिस समाज की भूमि पर गांव वालों का अधिकार है, उसमें उगे पेड़–पौधों के प्रति और सरकार के अधीन वनों के प्रति समुदाय का क्या दृष्टिकोण है?

इसी प्रकार, भूमि के उपयोग में आये बदलाव, उसमें होने वाली फसलों में आये

जंगल से गाँव का रिश्ता पहले कैसा था, अब कैसा है? जंगल जब से सरकार के हो गये, गाँव के लोग उसे किस नजर से देखने लगे?

बदलावों का पता करना होगा। ये बदलाव क्यों आये? इससे जल, जंगल, जमीन के अर्न्तसम्बन्धों का पता भी चलेगा।

कुल मिलाकर, यह देखना होगा कि प्राकृतिक संपदा के हिसाब से आज हम ज्यादा समृद्ध हुए हैं या पहले ज्यादा समृद्ध थे। जो भी बदलाव आया, वह क्यों आया – कारणों की समीक्षा हो तथा इन बदलावों का असर हम पर क्या पड़ा –प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावों की जांच हो। गाँवों से पलायन का प्राकृतिक संपदा से कोई संबंध है क्या? इसकी जाँच इतिहास के अध्ययन द्वारा हो सकती है।

आस–पास के पशु–पक्षी :

गांव के इलाके में कौन–कौन से जानवर (पालतू एवं जंगली), पक्षी, कीड़े–मकौड़े पाए जाते हैं, इनका विस्तृत अध्ययन हो सकता है। इन सभी का खेती–जंगल–पानी–मिट्‌टी–हवा से गहरा संबंध है। इसका बारीकी से अध्ययन करवाया जा सकता है। चिड़िया खेत से दाना चुगती है लेकिन उसकी बीट अत्यंत पौष्टिक खाद भी है। कई बीज बिना पक्षियों के पेट में जाए, पनपते ही नहीं हैं। पीपल इसका एक उदाहरण है। इसका विस्तृत अध्ययन बड़े–बुजुर्ग हमें करवा सकते हैं। इस अध्ययन से प्रकृति की विभिन्न इकाइयों के बीच परस्पर पूरकता का पता चलेगा।

इस तरह, पहले और आज की तुलना की जाए। पहले कौन–से पशु–पक्षी, कीड़े–मकौड़े, तितलियां अन्य जीव–जंतु पाए जाते थे; अब कौन–से पाए जाते है? इसमें आए बदलावों के कारणों एवं प्रभावों की समीक्षा की जा सकती है।

यह देखना होगा कि प्राकृतिक संपदा के हिसाब से आज हम ज्यादा समृद्ध हुए हैं या पहले ज्यादा समृद्ध थे। जो भी बदलाव आया, वह क्यों आया – कारणों की समीक्षा हो तथा इन बदलावों का असर हम पर क्या पड़ा –प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावों की जांच हो।

जीव–जन्तुओं का संबंध आबोहवा, पेड़–पौधों से होता है। जब आस–पास के वातावरण में बदलाव आता है तो पशु–पक्षियों में भी बदलाव आता है। बाघ नरभक्षी क्यों बने, बंदर ढीठ क्यों बनते जा रहे हैं, इसका अध्ययन किया जा सकता है। उन कारणों को समझा जा सकता है जिनकी वजह से ये बदलाव आये। इन बदलावों का क्या प्रभाव पड़ा – इसे भी समझा जा सकता है। पशु–पक्षियों, कीड़े–मकोड़ों का संबंध पेड़–पौधों, पानी, इत्यादि से होता है – इसे भी समझा जा सकता है।

[हमें इतिहास को पढ़ाते वक्त इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि हम इसमें अन्य विषयों का समावेश कर रहे हैं, बल्कि जहाँ पर यह समन्वय स्वतः होता है, उसे होने देना चाहिये ताकि हमारी शिक्षा खण्डों में विभाजित न रहे और हमारा ध्यान विषयों के सह–संबंध की ओर भी जाए। इससे इतिहास–शिक्षण हमारे वास्तविक जीवन के करीब आ जाएगा।]

पारंपरिक ज्ञान :

भारतीय किसान के पास अत्यन्त सम्पन्न विद्या–सम्पदा एवं विद्या–परम्परा है। मिट्टी के विविध रूप, उनकी क्षमताएँ, उनकी आवश्यकताएँ, भूमि की जुताई की आवश्यकता का स्वरूप व स्तर, मौसम की जानकारी, वर्षा संबंधी भिन्न–भिन्न रूपों और सम्भावनाओं की जानकारी; ठंड, पाला, कुहासा, धुंध, ओस, शीत लहर, आदि के रूपों और प्रभावों तथा उस सन्दर्भ में आवश्यक व्यवस्थाओं की

चिड़िया खेत से दाना चुगती है लेकिन उसकी बीट अत्यंत पौष्टिक खाद भी है। कई बीज बिना पक्षियों के पेट में जाए, पनपते ही नहीं हैं। पीपल इसका एक उदाहरण है। पशु–पक्षियों, कीड़े–मकोड़ों का संबंध पेड़–पौधों, पानी, इत्यादि से होता है – इसे भी समझा जा सकता है।

जानकारी; घास और गर्मी संबंधी जानकारी; हवा के भिन्न–भिन्न रूपों, रुख़ों, वेग और प्रभावों की जानकारी; सिंचाई संबंधी विविध रूपों और व्यवस्थाओं की जानकारी; बीज की किस्मों और सामर्थ्य का ज्ञान; फसल के अंकुरण, विकास, वृद्धि और कटाई संबंधी विविध दशाओं का ज्ञान; खरपतवार कम करने, उसको नष्ट करने और निराई–गुड़ाई का ज्ञान, खाद का ज्ञान, कटाई– गहाई–उड़ावनी, बीज और फसल के प्रबंध तथा भंडारण का ज्ञान; अलग–अलग अनाजों के गुणों और प्रभावों का ज्ञान; कृषि के उपकरणों से संबंधित ज्ञान; गाय–बैल, भैंस–बकरी की किस्मों, गुणों, दोषों, सामर्थ्य, ज़रूरत, पोषण, रक्षण, आदि से संबंधित ज्ञान; कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, खरगोश, चिड़िया, तथा विविध पशु–पक्षियों से संबंधित ज्ञान; शिष्टाचार और व्यवहार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थों, उनके प्रभावों, आदि का विस्तृत गहरा ज्ञान किसान नर–नारियों को तथा अन्य ग्रामीण नर–नारियों को रहता ही है – यह हम सभी जानते हैं। ये सब विद्या के ही रूप हैं।

आज मौसम, इत्यादि की जानकारी के लिए, आसमान में जाने और बादलों का सूक्ष्म एवं अत्यंत महंगे उपकरणों से निरीक्षण आदि का विस्तृत तंत्र है, जिसमें राष्ट्रीय धन का बड़ा व्यय होता है। अतः किसानों की इस विद्या–सामर्थ्य का समादर किया जाना चाहिए कि वे बिना ऐसे भारी खर्च के ही इस विद्या को सुरक्षित व गतिशील रखे हुए हैं। विविध अन्नों, फलों, शाक, कन्द, मूल, आदि तथा दूध, दही, घी, छाछ, आदि के गुणों और प्रभावों का, उनके पकाने या बनाने के विविध

रूपों और गुणों का ज्ञान; तेल, घी, मसाले, आदि सम्बन्धी विस्तृत विद्या; घर, बर्तन तथा घरेलू सामान, घरेलू उद्यान, घर का परिवेश, घर की सुरक्षा और सज्जा, आदि की विद्या; लेन–देन, रख–रखाव, मान–उपेक्षा, आदि संबंधी विस्तृत और गहरा ज्ञान; धर्म, उपासना, रीति–रिवाज, व्रत–अनुष्ठान, अल्पना–रंगोली, सिलाई–कढ़ाई, स्वास्थ्य, स्वच्छता, घरेलू चिकित्सा संबंधी अनगिनत जानकारियाँ; बच्चों के पालन–पोषण की विद्या; समृधि में संयम और गरिमा तथा विपदा में धैर्य और गम्भीरता की विद्या – ये सब हमारी नारियों के सम्माननीय विद्यारूप हैं जिसकी हमें जानकारी होनी चाहिए।

स्मरणीय है कि प्रायः सभी धर्मग्रन्थों में कुलाचार और लोकाचार के बारे में अन्तिम निर्णय की अधिकारी घर की जानकार स्त्रियाँ ही मानी गई हैं। इसी प्रकार क्षेत्र के विविध लोकाचारों के बारे में अन्तिम अधिकारी उस क्षेत्र के जानकार शूद्र (साधारण जन) माने गए हैं। ये जानकारियाँ महत्वपूर्ण विद्याएँ ही हैं। आधुनिक विद्या–संस्थाएँ ऐसी जानकारियों के शोध संग्रह, सम्पादन, विश्लेषण, आदि में पर्याप्त धन व्यय करतीं और व्यक्तियों का श्रम लगातीं तो ये विद्याएँ उभर आतीं।

ग्रामीण व परम्परागत शिल्पियों को लकड़ी, लोहा, चमड़ा, बाँस, सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, आदि विविध धातु, मणि–माणिक्य, हीरे, जवाहरात तथा रत्न, लाख, रेशम, ऊन, सूत और मिट्टी से सम्बन्धित भिन्न–भिन्न कौशलों का ज्ञान और सामर्थ्य है ही। किसानों और ग्वालों, चरवाहों, आदि को गाय–बैल, भैंस–बकरी, ऊँट, भेड़, घोड़े, आदि से सम्बन्धित विस्तृत

ज्ञान है। सूअर, कुत्ते, खरगोश आदि के बारे में विशेषज्ञता से सम्पन्न परिवार भी परम्परागत समाजों में हैं। तैराकी, नौका–चालन, तीरन्दाजी, खेल, व्यायाम, नट–कौशल, बाजीगरी, आदि विद्याओं में समर्थ व निपुण व्यक्तियों की समाज में कमी नहीं है। चूसकर तथा अन्य तरीकों से विष उतारना, टूटी हड्डियों को जड़ी–बूटियों से जोड़ देना तथा जड़ी–बूटियों, औषधियों के विस्तृत प्रयोग की विद्या हमारे यहाँ रही है।

[एक बार एक स्कूल के बच्चे के कान में मक्की का दाना फंस गया था। एक बुजुर्ग ने पपीते की पूरी टहनी मंगवाई। पत्ता तोड़कर उसे हुक्के की नली जैसा बनाया गया। नली को कान के छिद्र पर लगाया गया। दूसरे छोर से पूरी शक्ति से सांस खींची गई। मक्की का दाना कान से निकलकर नली में आ गया। यह उदाहरण हमारे परंपरागत ज्ञान की महत्ता को स्पष्ट करता है।]

अब इन विद्याओं की पिछले दस–बारह वर्षों से कुछ चर्चा होने लगी है। आग पर चलने की विद्या के प्रति इधर कौतुहल बढ़ा है। ये सभी विद्याएँ समादरणीय हैं।

फसलें :

गाँव में वर्ष भर में कितनी फसलें होती हैं और उनमें क्या–क्या उगाया जाता है? पहले और आज में क्या फर्क आया है? इसका पता करना। पहले ऊसर भूमि ज्यादा थी या आज ज्यादा है? बिना सिंचाई के पहले फसलें ज्यादा थी या आज ज्यादा हैं? इन सब बातों का पता लगाया जा सकता है।

बड़े–बुजुर्गों से पता किया जा सकता है

कि पहले के जमाने में कौन–कौन सी फसलें होती थीं। उनमें क्या–क्या उगाया जाता था और आज क्या उगाया जाता है? इसमें जो फर्क आया है, उस पर चर्चा की जा सकती है। इसके कारणों को भी खोजा जा सकता है कि यह फर्क क्यों आया और उसके क्या प्रभाव पड़े हैं। अनाज/फसलों पर कीटों का प्रभाव पहले अधिक होता था या आज अधिक होता है? कहीं–कहीं पारम्परिक फसलों, पारम्परिक अनाजों की जगह नये बीज इस्तेमाल हो रहे हैं तथा नकदी फसल पर भी जोर है। इस फर्क को समझना चाहिए।

यह बात देखने में आती है कि अनावृष्टि या अतिवृष्टि से नये बीजों या नई किस्म की फसलों को ज्यादा नुकसान पहुंचता है, बनिस्बत पारम्परिक फसलों के। इस विषय पर चर्चा होनी अच्छी रहेगी। मिश्रित खेती जो परम्परा में हुआ करती थी, उसकी जानकारी भी बच्चे ले सकते हैं कि किस फसल के साथ क्या–क्या उगाया जाता था और उससे क्या लाभ/हानि हुआ करते थे। पौष्टिकता और मौसमानुसार पारम्परिक फसलें स्वास्थ्य की दृष्टि से कितनी अनुकूल बैठती हैं?

ऐसी कौन–सी फसलें है जो पहले उगाई जाती थीं और आज बिल्कुल नहीं या बहुत कम उगाई जाती हैं। इसके कारणों की भी जांच होनी चाहिए तथा इसके प्रभावों का भी विश्लेषण होना चाहिए। पारम्परिक फसलों में पानी की खपत और नई फसलों में पानी की खपत की तुलना भी की जा सकती है। इस हिसाब से भी फसलों का मूल्यांकन किया

जाना ठीक रहेगा। स्वावलम्बन एवं पौष्टिकता के आधार पर फसलों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

इसी प्रकार, प्रति एकड़ या प्रति हेक्टेयर पैदावार का पहले और आज में क्या अंतर आया है? इसकी भी समीक्षा की जा सकती है।

खाद के उपयोग में क्या फर्क आए हैं, इसकी भी समीक्षा हो सकती है। कृत्रिम खाद या रासायनिक खाद और प्राकृतिक खाद या जैविक खाद के उपयोग में आये फर्क तथा उसके प्रभाव पर भी चर्चा हो सकती है।

बहुत जगह देखा गया है कि कृत्रिम खाद से शुरू–शुरू में पैदावार बढ़ती है, परन्तु हर साल उसकी मात्रा बढ़ानी पड़ती है और एक समय के बाद वह भूमि की उर्वरकता को नष्ट कर देती है। स्थानीय लोगों के अनुभवों की जांच की जा सकती है। परम्परा में खाद बनाने के तरीकों पर भी चर्चा हो सकती है।

इसी प्रकार, परम्परा में बीज संरक्षण तथा कृषि की अन्य पद्धतियों पर भी चर्चा हो सकती है।

विकास की दौड़ में बिना सही मूल्यांकन किये हमने बहुत सारे परम्परागत तरीके, परम्परागत अनाज और फसलों को लगाना छोड़ दिया है। हम अब बच्चों के साथ मिलकर कृषि की परम्परा का सही–सही मूल्यांकन कर सकते हैं। कई पारम्परिक अनाजों और दालों को लोग आज हीन दृष्टि से देखने लगे हैं। इसका सही मूल्यांकन हम कर सकते हैं। फसल नाजुक है या मजबूत प्रतिकूल मौसम

विकास की दौड़ में बिना सही मूल्यांकन किये हमने बहुत सारे परम्परागत तरीके, परम्परागत अनाज और फसलों को लगाना छोड़ दिया है।

में भी टिक सकती है या नहीं, अनाज में कीट–अवरोधक क्षमता है या नहीं, पौष्टिकता, स्थान विशेष के मौसम के मुताबिक स्वास्थ्य के अनुकूल या प्रतिकूल – ये मूल्यांकन के आधार हो सकते हैं।

खेती की परम्परा में सहभागिता और सामूहिक भागीदारी को भी देखना चाहिये। पहले और आज में क्या फर्क आया है? गांव में आज भी सामूहिकता एवं सहभागिता देखने को मिलती है, पर इसमें फर्क भी आया है। इसको विभिन्न आयामों से देखा जा सकता है। कुल कितना अनाज, दाल, इत्यादि की जरूरत है और कितना पैदा होता है – इसकी जांच–पड़ताल हो सकती है। पहले किस तरह की फसलें अधिक उगाई जाती थीं, अब किस तरह की?

शिक्षक चाहें तो इस विषय की गहराई में जा सकते हैं और इस पर चर्चा और लेखन दोनों करवाया जा सकता है। गाँव की फसलों, कृषि पद्धतियों पर अच्छी पुस्तक तैयार की जा सकती है। इसको पढ़ाते वक्त कहीं–कहीं गणित का प्रयोग भी किया जा सकता है। जैसे – प्रति एकड़ पैदावार का हिसाब–किताब, बीज की मात्रा का हिसाब–किताब, इत्यादि।

गाँव की स्वायत्तता/बाजार पर निर्भरता :

हम इस बात की जांच कर सकते हैं कि जरूरत की किन–किन वस्तुओं के लिए गाँव आत्म–निर्भर है और किन–किन के लिए पर–निर्भर है। इसकी तुलना पहले के जमाने से की जा सकती है। पहले किन–किन वस्तुओं के लिए गाँव पर–निर्भर था और आज कितना पर–निर्भर हैं।

जरूरत की किन–किन वस्तुओं के लिए गाँव आत्म–निर्भर है और किन–किन के लिए पर–निर्भर है।

जरूरत की वस्तुओं (खाना, कपड़ा एवं अन्य) की सूची तैयार कर उसे दो भागों में बांटा जा सकता है। एक, वे वस्तुएं जो गाँव में उपलब्ध हैं, तथा दूसरी, वे वस्तुएं जो बाहर से लानी पड़ती हैं। पहले के मुकाबले आज गाँव ज्यादा आत्म–निर्भर है या पर–निर्भर, इस पर चर्चा हो सकती है। हो सकता है कि लोगों की जरूरतें भी बढ़ गयी हों। इस पर भी बात हो सकती है कि क्या कारण है कि पहले के मुकाबले आज गाँव ज्यादा पर–निर्भर हैं।

आज जो जरूरतें बढ़ी हैं, उसके पीछे कौन–से कारण समझ में आते हैं। ये जरूरतें कितनी वास्तविक हैं और कितनी बाजार द्वारा गढ़ी गयी हैं, इनकी समीक्षा हो सकती है।

अगर समय हो, रुचि हो और बड़ी उम्र के बच्चे हों, तो हम गाँव का विस्तृत सर्वेक्षण भी करवा सकते हैं। इसमें यह पता कर सकते हैं कि गाँव की वर्तमान आवश्यकता क्या है। आवश्यकता में भोजन, कपड़े–लत्ते तथा अन्य वस्तुओं को भी देखा जा सकता है। जैसे– गाँव की कुल आबादी को देखते हुए यह पता करना कि भोजन में अनाज की, दालों की, तेल–तिलहन की, सब्जी की, कितनी मात्रा की जरूरत सालभर में पड़ती है। अनाज में अलग–अलग – चावल, गेहूँ, मक्का, मंडुवा, इत्यादि की कितनी मात्रा की आवश्यकता है। इसी प्रकार दूध और घी, इत्यादि की आवश्यकता भी निकाली जा सकती है। कुल मिलाकर, खाने–पीने की मूलभूत आवश्यकताओं का पता किया जा सकता है। एक औसत वयस्क पुरुष/महिला को दिनभर में (सालभर में भी) कौन–कौन सी एवं भोजन की कितनी वस्तुएं

आज जो जरूरतें बढ़ी हैं, उसके पीछे कौन–से कारण समझ में आते हैं। ये जरूरतें कितनी वास्तविक हैं और कितनी बाजार द्वारा गढ़ी गयी हैं, इनकी समीक्षा हो सकती है।

चाहिये, इसका आकलन किया जा सकता है। विभिन्न उम्र के बच्चों, जैसे 1–5 साल के बच्चे, तथा 5–15 साल के बच्चों की भोजन–आवश्यकताएँ थोड़ी भिन्न हो सकती हैं, उसका भी आकलन किया जा सकता है। फिर गाँव की आबादी मालूम करके, पूरे गाँव की आवश्यकता का आकलन हो सकता है।

इसी प्रकार, कपड़े–लत्ते (सूती, गरम, ओढ़ने, बिछाने के वस्त्र, जूते, इत्यादि समेत) का भी आकलन किया जा सकता है। अन्य वस्तुओं; जैसे तेल, साबुन, लकड़ी, कोयला, बिजली, इत्यादि का भी आकलन किया जा सकता है। इस प्रकार भोजन, वस्त्र एवं संसाधनों के आधार पर गाँव की कुल आवश्यकताओं का आकलन किया जा सकता है और तब यह देखा जा सकता है कि इनमें से गाँव में क्या–क्या और कितना–कितना उपलब्ध है।

इसका भी आकलन हो सकता है कि अगर पूरी मेहनत की जाये और उपलब्ध संसाधनों (भूमि, जल, जंगल, हुनर, ज्ञान) का सदुपयोग किया जाये तो कितना उपलब्ध हो सकता है।

इन तीन तरह की जानकारियों (**i.** आवश्यकता **ii.**उपलब्धता एवं **iii.** सम्भावित उपलब्धता) से इस बात का विश्लेषण किया जा सकता है कि पहले के मुकाबले विभिन्न आवश्यकताओं का उत्पादन बढ़ा है या घटा है। हो सकता है कि समय के साथ कई वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा हो और कई का घटा हो। इनके कारणों को जानने की कोशिश भी की जा सकती है। उत्पादन में फर्क के

कारणों में यह भी निकल सकता है कि लोगों की पसन्द या आदतें बदल रही हैं। फिर इसका भी विश्लेषण किया जा सकता है कि ऐसा क्यों हो रहा है। इन सब से गाँव के बारे में हमें बहुत कुछ सोचने–समझने को मिलेगा।

बात को इसके आगे भी बढ़ाया जा सकता है। जरूरत की जो चीजें गाँव के बाहर से आती हैं, वे कहाँ से आती हैं, इसकी जानकारी बच्चे ला सकते हैं। यह भी पता कर सकते हैं कि इन चीजों पर गाँव के लोग कुल कितना पैसा खर्च करते हैं यानी कुल कितना पैसा गाँव के बाहर जाता है।

यह भी पता किया जाये कि अगर हम गाँव में उत्पादन शुरू कर दें तो इसमें से कितना पैसा बाहर जाने से रोका जा सकता है।

इसका भी अनुमान लगाया जा सकता है कि गाँव में बाहर से नौकरी द्वारा या मजदूरी या व्यापार करके कितना पैसा आता है। गाँव के लोग जो घर से बाहर रहकर काम करते हैं, वे अपनी कमाई का एक हिस्सा घर भेजते होंगे। इसी प्रकार, कुछ लोग कभी–कभार मजदूरी या ठेकेदारी या व्यापार द्वारा कुछ पैसा कमा कर गाँव लाते होंगे। इन सब का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन सब के उत्तर हमें सीधे–सीधे नहीं मिलेंगे। इसमें हमें काफी कुछ सोचना होगा, गणित लगाना होगा, बातचीत के तरीके ढूंढ़ने होंगे, विश्लेषण करने के तरीके मालूम करने होंगे। इस प्रक्रिया में बच्चे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ सीखेंगे। जो सीखेंगे, वह

उनकी अपनी रोज़मर्रा की जिन्दगी के बहुत नजदीक होगा।

चर्चा को आखिर में गाँव की स्वायत्तता पर लाना है। गाँव कुल मिलाकर और अलग–अलग वस्तुओं के अर्थ में कितना स्वायत्त है।

इसकी पहले से तुलना करनी चाहिये और समझना चाहिये कि भले ही गाँव में पहले के मुकाबले ज्यादा पैसा आता हो, परन्तु फिर भी गाँव सम्भवतः पहले के मुकाबले ज्यादा पर–निर्भर है। इसे समझना चाहिये।

इस बात का भी अध्ययन करवाया जा सकता है कि मूल्य एवं कीमत में भेद होता है। किसी भी चीज की कीमत हर स्थान में अलग–अलग हो सकती है और समय के साथ भी कीमत बदलती रहती है। साथ ही, कीमत समय और स्थान, दोनों में से किसी एक के बदलने से भी बदलती है। जब चीज पुरानी हो जाती है तो उसकी कीमत आमतौर पर घट जाती है (कभी–कभी बढ़ती भी है)। जो चीज जहां बनती है या पैदा होती है, वहां आमतौर पर वह चीज कम कीमत पर मिलती है। दूरी के साथ दाम बढ़ते जाते हैं। जिस अर्थ में यहां मूल्य कहा गया है, वह समय और स्थान के साथ नहीं बदलता। जब तक वह चीज अपने स्वरूप में रहती है, तब तक उसका मूल्य उसमें समाया रहता है। जैसे– कलम का मूल्य, उसके लिखने की क्षमता है, गेहूं का मूल्य उसकी पौष्टिकता है; गाड़ी का मूल्य उसकी एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की क्षमता है; पानी का मूल्य उसके

मूल्य एवं कीमत में भेद होता है। किसी भी चीज की कीमत हर स्थान में अलग–अलग हो सकती है और समय के साथ भी कीमत बदलती रहती है।

प्यास और आग बुझाने की क्षमता है। इस प्रकार, हम देख पाते हैं मूल्य और कीमत में भेद है और मूल्य हमेशा एक जैसा रहता है। कीमत समय, स्थान एवं हमारी पसंद/नापसंद के मुताबिक घटता–बढ़ता रहता है। आमतौर पर हम लोग मूल्य और कीमत को पर्याय की तरह प्रयोग करते हैं परंतु इन दो अर्थों के भेद के प्रति बच्चों का ध्यानाकर्षण करना बहुत ही लाभकारी साबित होता है।

जिस अर्थ में यहां मूल्य कहा गया है, वह समय और स्थान के साथ नहीं बदलता। जब तक वह चीज अपने स्वरूप में रहती है, तब तक उसका मूल्य उसमें समाया रहता है।

इस बात का सर्वेक्षण भी किया जा सकता है कि गाँव में गुटका, सिगरेट, शराब एवं पेट्रोल/डीजल पर कितनी फिजूलखर्ची होती है। इसका वार्षिक अनुमान लगाना उचित होगा। इसके अलावा, इस बात पर अच्छी चर्चा हो सकती है कि विज्ञापन और बाजार से प्रभावित होकर ऐसी कौन–कौन सी वस्तुएं हैं जो अब हमारी आवश्यकता बन गई है। विज्ञापन की दुनिया हमें किस प्रकार प्रभावित करती है, इसको दो–चार प्रचलित विज्ञापनों का बारीकी से विश्लेषण करके बच्चों का ध्यानाकर्षण कराया जा सकता है। हमारे अंदर छुपी मान्यताओं और आकांक्षाओं (जैसे– अच्छा दिखने, रोबीला दिखने/बनने, स्मार्ट दिखने, प्रभावशाली दिखने, इत्यादि की दबी हुई आकांक्षाएं) का सहारा लेकर विज्ञापन सूक्ष्म रूप से हमें प्रभावित करते हैं जिसका फायदा अंततः बाजार को मिलता है।

गाँव की न्याय व्यवस्था :

गाँव में आपसी झगड़ों को सुलझाने की क्या परम्परा रही है? इसकी छानबीन की जा सकती है। ये पारम्परिक व्यवस्थाएं क्या थीं,

उनके तरीके क्या थे, फैसला लेने वाले लोगों का चुनाव कैसे किया जाता था? इन बातों की जानकारी ली जा सकती है। यह भी पता किया जा सकता है कि आज के मुकाबले पहले झगड़े ज्यादा होते थे या कम? और उनका निपटारा स्थानीय स्तर पर, पहले ज्यादा हो जाता था या आज? आज की आधुनिक न्याय–प्रणाली से लोगों को ज्यादा संतुष्टि मिलती है या परम्परागत प्रणाली से? आपसी झगड़ों का निपटारा करने के लिए, मुकदमेबाजी में आजकल लोग कितना पैसा खर्च करते है – इसकी मोटी जानकारी ली जा सकती है।

गीत–मेले–त्योहार :

सालभर का एक कैलेण्डर बनाया जा सकता है जिसमें हर माह होने वाले मेले, त्योहारों की सूची बनाई जा सकती है। विक्रमी संवत्, चन्द्र गणना, अंग्रेजी तारीख से सन्, आदि का उल्लेख किया जा सकता है। वे कब होते हैं (तिथि, इत्यादि); कहाँ मनाये जाते हैं (अगर किसी स्थान विशेष पर होते हैं; अक्सर मेले किसी खास स्थान पर मनाये जाते हैं); कैसे मनाये जाते हैं (उनसे जुड़ी परम्परायें, मान्यतायें, रीति–रिवाज, इत्यादि); उनसे संबंधित गीत, नाच, इत्यादि; किन लोगों की उसमें प्रमुख भूमिका होती है? इनके पीछे की मान्यताओं का पता भी करना चाहिये। इन त्योहारों, मेलों का संबंध खेती, मौसम तथा भोजन से भी देखना चाहिये।

यह भी देखना चाहिये कि पहले और आज में इनको मनाने में क्या फर्क आया है

गेहूं का मूल्य उसकी पौष्टिकता है; गाड़ी का मूल्य उसकी एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की क्षमता है; पानी का मूल्य उसके प्यास और आग बुझाने की क्षमता है। मूल्य और कीमत में भेद है और मूल्य हमेशा एक जैसा रहता है।

एवं वह बदलाव क्यों आया है। लोगों की भागीदारी में क्या फर्क आया है। इसके पीछे कौन–से कारण हैं?

अन्य सुविधायें (सड़क, बिजली, स्कूल, अस्पताल, इत्यादि) :

ये आधुनिक सुविधाएं गाँव में कब आईं? उनका गाँव के जन–जीवन पर क्या असर पड़ा। इनके आने से जन–जीवन पर अच्छे/बुरे, दोनों प्रभावों का गहराई से अध्ययन किया जाए। इनके आने से गाँव की स्वायत्तता, आत्मनिर्भरता, समृद्धि, खुशहाली, स्वतंत्रता पर क्या असर हुए हैं – इन्हें समझने का प्रयास किया जा सकता है।

उपर्युक्त निर्देशों/सुझावों के आधार पर शिक्षण करने से बच्चों में विश्लेषण–शक्ति का विकास होगा और मौलिक ढंग से सोचने की आदत भी उनमें पनपेगी।

गांव की एक सुंदर परिभाषा : जहाँ हर व्यक्ति के भोजन की सुरक्षा हो और हरेक के सम्मान की व्यवस्था हो।

परिशिष्ट

दो वर्ष पूर्व, हमने कई प्रदेशों के शिक्षा सचिवों को एक पत्र लिखा था जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि गाँवों के स्कूलों को एक संसाधन एवं स्थानीय सूचना केंद्र के रूप में विकसित किया जाए। स्कूल के बच्चे एवं शिक्षक मिलकर विभिन्न प्रकार की जानकारी एकत्रित करके उसका विश्लेषण करें तथा उसको संकलित करने के पश्चात् हर साल उसको अद्यतन करते रहें। इसको करते वक्त बच्चे न सिर्फ अपने क्षेत्र को अच्छी तरह समझ पाएंगे वरन् साथ–साथ विभिन्न विषयों के ज्ञान में भी बढ़ोतरी होगी तथा वे विषयों को वास्तविक जीवन से जोड़ पाने में समर्थ भी हो सकेंगे। क्योंकि यह सारी प्रक्रिया व्यावहारिक होगी, इसलिए वे इन प्रक्रियाओं के पीछे की अवधारणाओं को आत्मसात् कर पाएंगे और भविष्य में इन अवधारणाओं की समझ के आधार पर इस ज्ञान का उपयोग दुनिया में कहीं भी कर पाएंगे।

इस पत्र के मुख्य अंश यहां दिए जा रहे हैं–

हर शिक्षक अपने स्तर पर अपने गांव व मौहल्लों के स्कूल में बच्चों के साथ मिलकर अपने इलाके का (पांच–दस किलोमीटर) विस्तृत सर्वेक्षण और जानकारी हासिल करे। इसमें बच्चे एंव शिक्षक निम्न बातों की जानकारी स्थानीय लोगों से मिलकर हासिल कर सकते है।

- गांव की जनसंख्या – स्त्री, पुरुष, उनकी उम्र, शैक्षणिक योग्यता, व्यवसाय तथा हुनर
- इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए गांव/शहर की सीमाओं का नक्शा बच्चे बना सकते हैं जिसमें सीमा के परे महत्त्वपूर्ण स्थान एवं सीमा के अंतर्गत महत्त्वपूर्ण स्थानों (बस्ती, स्कूल, खेत, नदी–नाले, पहाड़, इत्यादि) को दर्शाया जा सकता है। यहां पर बच्चों से अनुपात के बारे में अच्छी चर्चा हो सकती है और यह जरूरी भी है क्योंकि कोई भी नक्शा बिना अनुपात की समझ के नहीं बन सकता। पहले स्कूल का नक्शा बनाया जाए, उसके बाद गांव/शहर का नक्शा बनाया जाए।
- स्कूल में दो यंत्र होने जरूरी हैं – वर्षा मापक यंत्र और अधिकतम/न्यूनतम तापमापी यंत्र। रोज सुबह एक निश्चित समय पर बच्चे एक चार्ट पर पिछले चौबीस घंटे में हुई वर्षा एवं न्यूनतम/अधिकतम तापमान को दर्शा सकते है। सालभर के रिकॉर्ड को देखकर बच्चे खुद इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि अलग–अलग मौसम में न्यूनतम और अधिकतम तापमान क्या रहा। मौसम के बदलाव के बारे में भी वे चार्ट के आंकड़ों और अपने अनुभवों को मिलाकर कुछ समझ बना सकते है। सालभर में कितनी वर्षा हुई, इसका अंदाजा भी वे लगा पाएंगे और इसमें से बारिश के तीन महीनों (आषाढ़, सावन एवं भादौ) में सालभर होने वाली वर्षा का

कितना अनुपात हुआ, इसका भी हिसाब लगा पाएंगे। हमारे देश में इन तीन महीनों में सालभर होने वाली वर्षा का लगभग 90 प्रतिशत पानी गिर जाता है। अपने गांव/शहर की वर्षा की तुलना वे अपने राज्य एवं भारतवर्ष में होने वाली वर्षा से कर पाएंगे।

- जिस गांव/शहर का अध्ययन हो रहा है, वह भारत या दुनिया के अन्य गांवों, शहरों से कैसे जुड़ा है – सड़क, रेल एवं हवाई जहाज या पानी के मार्ग से; इसका अध्ययन करवाया जा सकता है। गांव/शहर से होकर जाने वाली सड़कें कौन–कौन सी हैं, वे कहां–से–कहां तक जाती हैं? सड़क की लंबाई; वह ग्रामीण सड़क है, राज मार्ग है, इत्यादि।
- आस–पास के मुख्य स्थान – तीर्थ, पर्यटन, स्थानीय महत्त्व की जगहें – जहां मेले लगते हों, औद्योगिक महत्त्व रखने वाले स्थान, जहां स्थानीय कारीगरी की चीजें बनती हों, अन्य गांव–शहर– ये सब जिस गांव का अध्ययन हो रहा है, वहां से किस दिशा में हैं, कितनी दूर हैं, गांव से किस सड़क द्वारा जुड़े हैं, यातायात के कौन–कौन से साधन हैं – इन सब का अध्ययन हो सकता है।
- जानवरों को सर्वेक्षण – अलग–अलग पशुओं की संख्या एंव उनसे होने वाला उत्पादन। आय का अनुमान, उनसे होने वाले फायदे; जैसे – गाय से सिर्फ दूध ही नहीं बल्कि गोबर और मूत्र भी मिलता है – जो उपयोगी है– सर्वेक्षण के दौरान इन सब बातों पर बच्चों का ध्यान जाए।
- स्थानीय गीत, लोक–कथाएं, मुहावरे मिथक (अलग–अलग जातियों की अपनी–अपनी कथाएं और कहीं–कहीं जाति–पुराण भी मिलते है), इत्यादि भी इकट्ठे करवाने चाहिए।

  किसी–किसी इलाके में हमें निश्चित रूप से बहुत समृद्ध–सामग्री मिलेगी। इनका संकलन निकालने के बारे में भी सोचा जा सकता है। बच्चे इसमें अहम् भूमिका निभा सकते हैं। बड़े–बुजुर्गों से कथाएं, गीत, इत्यादि सुनकर बच्चे उन्हें लिपिबद्ध करें और हो सके तो संपादन भी कर सकते हैं।

- स्थानीय बोली–भाषा का एक छोटा (हजार से पांच हजार शब्द) शब्द–कोश भी बच्चों की मदद से निकालने के बारे में सोचा जा सकता है। शिक्षक बच्चों को अलग–अलग विषय–वस्तु (बर्तन, पौधे, पेड़, अन्य वनस्पतियां, खेती–बाड़ी से संबंधित शब्द, खान–पान से संबंधित शब्द, औषधियों से संबंधित शब्द, इत्यादि) के दस–बीस शब्द इकट्ठा करने की जानकारी दे सकते हैं। इससे यह भी निकलकर आएगा कि बहुत–सारे स्थानीय बोली–भाषा के शब्दों में से ऐसे शब्द भी हैं जिनका हिंदी या अंग्रेजी में सीधा अनुवाद नहीं है यानी उनके पर्यायवाची शब्द हिंदी या अंग्रेजी में नहीं हैं। जैसे हमारे यहां टिहरी जिले के जौनपुर क्षेत्र में, जहां हम काम करते हैं, दो शब्द हमें ऐसे मिले जिनका न हिंदी में और न अंग्रेजी में कोई पर्यायवाची मिलता है। 'अणकटेर'; जिस पेड़ को कुछ वर्षों के लिए काटा नहीं जाता है, यह यहां की प्रथा है।

'परालना'; जैसे– बच्चों को हम पालते हैं, उसी प्रकार यहां की स्थानीय भाषा में 'परालना' शब्द का इस्तेमाल पौधे को पालने के लिए किया जाता है।

यह काम एक–दो साल में कक्षा 5 से लेकर कक्षा 8 तक के बच्चे किसी समर्थ शिक्षक की मदद से आसानी से कर सकते हैं। खासकर, आदिवासी क्षेत्रों में यह काम बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। हमें इसके द्वारा स्थानीय संस्कृति की कई समृद्ध परंपराओं एवं ज्ञान का पता चलेगा।

- इसी प्रकार, विभिन्न दैनंदिन कार्यवाहियों से जुड़ी मान्यताओं का भी पता लगाया जा सकता है, जैसे खेती और फसलों से जुड़ी मान्यताएं, मौसम से जुड़ी मान्यताएं, जानवरों एवं पशु–पक्षियों से जुड़ी मान्यताएं, मिट्टी–पानी–हवा–आंधी–तूफान–सर्दी–गर्मी– बारिश –और इन सबका आपसी संबंध– इसके बारे में हर इलाके में बहुत ही समृद्ध मान्यताएं हैं, जिन्हें हमने आधुनिकता के चक्कर में, 'अंधविश्वास' की टोकरी में रद्दी समझकर, डाल दिया है। परंतु इन मान्यताओं में बहुत–सारा ज्ञान ऐसा है जो सदियों के अनुभव से जनित, पीढ़ी–दर–पीढ़ी हमारे पास आया है। इस पर ध्यान देने की जरूरत है और स्कूल इसमें एक अहम् भूमिका निभा सकते हैं। इस ज्ञान की सच्चाई को भी जांचा जा सकता है, पर उसके तरीके किसी प्रयोगशाला में न होकर, जिन्दगी में होंगे। इनकी भी भविष्य में अलग–अलग पुस्तकें बन सकती हैं।
- गांव के इलाके में कौन–कौन से जानवर (पालतू एवं जंगली), पक्षी, कीड़े–मकौड़े पाए जाते हैं, इनका विस्तृत अध्ययन हो सकता है। इन सभी का खेती–जंगल–पानी– मिट्टी–हवा से गहरा संबंध है। इसका बारीकी से अध्ययन करवाया जा सकता है। चिड़िया खेत से दाना चुगती है लेकिन उसकी बीट अत्यंत पौष्टिक खाद भी है। कई बीज बिना पक्षियों के पेट में जाए, पनपते ही नहीं हैं। पीपल इसका एक उदाहरण है। इसका विस्तृत अध्ययन बड़े–बुजुर्ग हमें करवा सकते हैं। इस अध्ययन से प्रकृति की विभिन्न इकाइयों के बीच परस्पर पूरकता का पता चलेगा।
- इसी प्रकार शिक्षक और बच्चे मिलकर अपने इलाके के पेड़–पौधों का और उनका स्थानीय लोग क्या–क्या उपयोग करते हैं (जैसे– ईंधन में, चारे में, औषधि में, अन्य जरूरत की चीजों में) – इसका पता लगाया जा सकता है। साथ ही, पेड़–पौधों का एवं मिट्टी–हवा–पानी–पशु–पक्षियों का क्या संबंध है, इनका भी अध्ययन हो सकता है। इस अध्ययन में सबसे सशक्त संदर्भ व्यक्ति स्थानीय बड़े–बुजुर्ग होंगे। बच्चे व शिक्षक खुद अवलोकन करके भी अध्ययन कर सकेंगे।
- इसी प्रकार स्थानीय फसलों, उनके उत्पादन का अध्ययन किया जा सकता है। यह भी देखा जा सकता है कि पिछले 100 वर्षों में खेती के क्षेत्र में विविधता एवं उत्पादन घटा है या बढ़ा

है। किन फसलों का उत्पादन प्रायः खत्म हो गया है। खेती में किन फसलों में पानी ज्यादा लगता है, किनमें कम। और आज कौन–सी फसलें बोयी जा रही हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से भी इन फसलों का अध्ययन किया जा सकता है। इसी के साथ, रासायनिक खाद, प्राकृतिक खाद का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। मिश्रित खेती और एक ही फसल की खेती का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है। पारंपरिक खेती किस प्रकार की होती थी – इसकी भी जानकारी ली जा सकती है।

- इलाके में, पानी–संरक्षण के तरीके, स्थानीय नदी–नालों–झीलों–तालाबों का अध्ययन भी करवाया जा सकता है। यहां इनका इतिहास भी देखा जाए कि पहले के मुकाबले आज पानी की उपलब्धता कहां–कहां घटी–बढ़ी है; जैसे– हो सकता है कि जिन घरों में पहले पानी नहीं आता था वहां पाइप से अब पानी आने लगा हो। साथ ही, यह भी हो सकता है कि स्थानीय नदी–नालों में पानी घटा हो या स्थानीय तालाब पहले से कम हुए हों। दोनों बातों का और उनसे जुड़े प्रभावों (तात्कालिक एवं दीर्घकालिक प्रभाव) का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।

- इस बात का भी अध्ययन किया जा सकता है कि इलाके में किस–किस प्रकार के कारीगर और कारीगरी मौजूद है। इससे इनके हुनर के बारे में विस्तृत जानकारी ली जा सकती है। जैसे, इनका कच्चा माल कहां से आता है? उत्पादन की प्रक्रिया क्या है? बनाया हुआ माल कहां बेचा जाता है? बनाने की विधि में प्रदूषण कितना फैलता है? (औद्योगिक इकाइयों से बने माल से हुए प्रदूषण और स्थानीय छोटी इकाइयों द्वारा बने माल से फैलने वाले प्रदूषण की तुलना की जा सकती है)। पहले के मुकाबले स्थानीय उद्योग या कारीगरी कम हुई या फली–फूली है? कम हुई है तो वे कारीगर अब क्या करते हैं? बड़े बच्चों के द्वारा स्थानीय उद्योग–धंधों की अर्थव्यवस्था का अध्ययन भी किया जा सकता है।

- गांव/शहर के लोग अपनी जरूरत की चीजें कैसे पूरी करते हैं? जरूरत की चीजें क्या–क्या हैं, उनकी सूची बनाई जा सकती है। खाने की चीजें, पहनने की चीजें, मकान बनाने की सामग्री एवं अन्य जरूरत की चीजें। इनकी भी सूची बनाई जा सकती है कि गांव में अपनी जरूरत की क्या–क्या चीजें पहले से ही उपलब्ध हैं और कौन–कौन सी चीजें वहां बाहर से लानी पड़ती हैं। सामग्री कहां–कहां से और कितनी दूरी से लानी पड़ती है, यहां पर, शिक्षक चाहें तो इस बात की चर्चा हो सकती है कि कौन–सी चीज हमारे जरूरत की है (जिनके बिना हमारा काम चलना मुश्किल है) और कौन–सी चीजें ऐसी हैं जो वास्तव में हमारी जरूरत नहीं है परंतु देखा–देखी या आरामतलबी की वजह से जरूरत बना दी गई है।

- इस बात का भी अध्ययन हो कि गांव में कौन–कौन सी सामग्री ऐसी होती है जिसे गांव के लोगों को बेचना पड़ता है। कितना और कौन–कौन सा सामान सथानीय तौर पर बिक जाता

है और कौन–सी चीजें बाहर बिकती हैं। बाहर बेचने के लिए कितनी दूर जाना पड़ता है? स्थानीय बाजार में उसकी कीमत कितनी है और बाहर जब बेचते हैं तो कितनी कीमत मिलती है?

- यहां इस बात का भी अध्ययन करवाया जा सकता है कि मूल्य एवं कीमत में भेद होता है। किसी भी चीज की कीमत हर स्थान में अलग–अलग हो सकती है और साथ ही, समय के साथ कीमत भी बदलती रहती है। कीमत समय और स्थान, दोनों में से किसी एक के बदलने से भी बदलती है। जब चीज पुरानी हो जाती है तो उसकी कीमत आमतौर पर घट जाती है (कभी–कभी बढ़ती भी है)। जो चीज जहां बनती है या पैदा होती है, वहां आमतौर पर वह चीज कम कीमत पर मिलती है। दूरी के साथ दाम बढ़ते जाते हैं। जिस अर्थ में यहां मूल्य कहा गया है, वह समय और स्थान के साथ नहीं बदलता। जब तक वह चीज अपने स्वरूप में रहती है, तब तक उसका मूल्य उसमें समाया रहता है; जैसे– कलम का मूल्य, उसके लिखने की क्षमता है, गेहूं का मूल्य उसकी पौष्टिकता है; गाड़ी का मूल्य उसकी एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की क्षमता है; पानी का मूल्य उसके प्यास और आग बुझाने की क्षमता है। इस प्रकार, हम देख पाते हैं मूल्य और कीमत में भेद है और मूल्य हमेशा एक जैसा रहता है जबकि कीमत समय, स्थान एवं हमारी पसंद/नापसंद के मुताबिक घटती–बढ़ती रहती है। आमतौर पर हम लोग मूल्य और कीमत को पर्याय की तरह प्रयोग करते हैं, परंतु इन दो अर्थों के भेद के प्रति बच्चों का ध्यानाकर्षण करना बहुत ही लाभकारी साबित होता है।
- इसी प्रकार स्थानीय वास्तु कला के बारे में शिक्षकों द्वारा विस्तृत जानकारी ली जा सकती है। भारतवर्ष के बहुत–सारे इलाकों में वास्तु कला में अलग–अलग ज्ञान–परंपराएं समाहित हैं; जैसे– किस दिशा में दरवाजा–खिड़की रखना है और क्यों रखना है, किस लकड़ी या मिट्टी का प्रयोग करना है, कुएं–बावड़ी को किस दिशा में रखना है, इत्यादि। रुचि के अनुसार इनकी गहराइयों में जाया जा सकता है और किसी पुराने कारीगर से जानकारियां ली जा सकती हैं।
- इन जानकारियों में कुछ तो सीधी–सीधी हुनर संबंधी होंगी और कुछ परंपरा से एवं मान्यताओं से आई हुई होंगी। पहले के और अबके मकानों का तुलनात्मक अध्ययन कई दृष्टियों से किया जा सकता है – खर्चे की दृष्टि से, पर्यावरण की दृष्टि से, स्थायित्व की दृष्टि से; स्थानीय अर्थव्यवस्था के लिए कौन ज्यादा उपयुक्त है, इस दृष्टि से; स्वास्थ्य की दृष्टि से, मौसम यानी गर्मी–सर्दी–बारिश की दृष्टि से, इत्यादि। कुल मिलाकर, पर–निर्भरता पहले के मुकाबले बढ़ी है या घटी है– इसका पता लगाया जा सकता है।

ऊपर कुछ मोटे–मोटे बिंदुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिससे शिक्षक खुद समर्थ होकर किताबों की जकड़ से बाहर निकलकर ज्ञान को व्यावहारिक बना पाएं। उपरोक्त

बिंदुओं पर अनेक प्रोजेक्ट दस दिन से लेकर कई महीनों तक के निकल सकते है। इन प्रोजेक्टों को करते बक्त बच्चे न सिर्फ लिखना, पढ़ना, बोलना और सुनना (भाषा के चार आयाम) सीखेंगे वरन् कैसे प्रश्न पूछे जाते हैं, कैसे उत्तर को सुनकर उसे लिपिबद्ध किया जा सकता है – इन बातों का भी व्यावहारिक ज्ञान होगा। साथ ही, भाषा के अलावा अन्य विषयों का; जैसे– भूगोल, सामाजिक–विज्ञान, विज्ञान, पर्यावरण, गणित, इत्यादि विषय भी स्वतः समाविष्ट होंगे। यही व्यावहारिक ज्ञान है, जहां विषय की जगह वस्तु की प्राथमिकता हो जाती है।

पवन कुमार गुप्ता
निदेशक 'सिद्ध'

Society for Integrated Development of Himalayas (SIDH)

READER'S FEEDBACK

Dear Reader,

We hope you have found this book useful. On behalf of SIDH and Kusuma Trust, who have supported this publication, we would request you to kindly take some time out and fill in this feedback form and help us improve our future publications.

Pawan K Gupta
Director, SIDH

FEEDBACK FORM

Name : ____________________

Organization / Institution : ____________________

Designation : ____________________

Address : ____________________

____

____

Phone Number (with area code) : ____________________

Email : ____________________

Title of the Book : ____________________

Section One: SIDH Publications – Others

1. How often do you receive SIDH publications? (Tick one of the following)
   (a) Once or twice in a year (b) Three times or more in a year
   (c) Rarely (d) Never

2. Does your School/Institute specify books to be used as text-books? If so, would you like to get our books included in such a list of recommended books?

3. What, in your opinion, are the unique features of our publications (You can tick more than one of the following)?
   (a) Simple and reader-friendly (b) Useful and practical
   (c) Analytical (d) Informative
   (e) Insightful (f) Dealing with issues usually left out by others
   (g) Holistic and Integrated approach (h) Any other (specify)

Section Two: GYAN TARANG

4. How would you rate the quality of this book?

Criteria	Poor.	Average	Good	Excellent	Not Applicable
(a) Content					
(b) Relevance					
(c) Coverage and Depth					
(d) Applicability					
(e) Language					
(f) Style (simplicity, clarity)					
(g) Layout					

5. On a scale of (0) to (4), how likely is it that you would recommend this book to your friends or colleagues? (0 = Never; 2 = Rarely; 3 = Often; 4 = Always)

6. Please use the following space to comment on (or critique) this publication.

7. Your suggestions to improve the quality of our future publications.

8. What are the new thrust areas (environment,etc.) – you would like in our future publications

1 2 3 4

Thanks for your time. Your feedback is of great value for our work. Kindly return the feedback form to:

SIDH
C/O SIDH Publications
P.O. Box 19
Hazelwood Cottage
Landour Cantt
MUSSOORIE – 248 179
Uttarakhand

The **KUSUMA TRUST** is a private charitable trust dedicated to **"CHANGE FOR THE BETTER"**. Kusuma has its headquarters in Gibraltar and aims to improve the lives of society's most marginalised and underprivileged members through projects and research.

kusuma

Apart from Gibraltar, Kusuma's primary geographic focus is India, where it concentrates its efforts in Uttarakhand, Andhra Pradesh and Western Orissa.

Kusuma is currently focusing its efforts on the following areas of intervention:

- **At Risk Children:**

  Kusuma aims to improve the lives of disadvantaged children by funding projects which will provide them with education, financial support, encouragement and in some cases, shelter and safety. Current projects span across groups of children in various situations, including street children, orphans, children in distress and children with disabilities.

- **Education**

  Kusuma believes that every child has the right to a formal education. Learning and education are paramount in ensuring a society's continued growth and development. By providing disadvantaged children with adequate education, one hands them the key to escape the self-prepetuating cycle of poverty in which they would otherwise be trapped. Amongst others, Kusuma has funded the construction of a new school, is supporting numerous scholarship programs and is helping improve performance in government schools.

For more information please visit www.kusumatrust.org